Con. 3. VII 2.48
350

अंक 7
संख्या 2

शुक्रवार
5 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर.. 97
2. विधान के मसौदे से सम्बन्धित प्रस्ताव-(*जारी*).. 97

भारतीय विधान-परिषद्

शुक्रवार, ता. 5 नवम्बर, सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक दिन के दस बजे कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में हुई।

प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्न सदस्यों ने प्रतिज्ञा ग्रहण की और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये:

श्री मुहम्मद इस्माइल (मद्रास : मुस्लिम)

श्री पी.एस. राव (जोधपुर)

विधान के मसौदे से सम्बन्धित प्रस्ताव—(*जारी*)

***अध्यक्ष:** माननीय डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर सेठ दामोदरस्वरूप का एक संशोधन मुझे प्राप्त हुआ है। यह संशोधन लगभग उसी प्रकार का है जैसा कि कल मौलाना हसरत मोहानी ने पेश किया था। लेकिन चूंकि इसमें थोड़ा-सा अन्तर है, मैं इस संशोधन को पेश करने की आज्ञा देता हूं। मेरा विचार है कि इस प्रस्ताव पर बोलने के लिये सदस्यों को सीमित समय ही दिया जाये। मेरे विचार से ऐसे अनेकों सदस्य हैं, जो इस वाद-विवाद में भाग लेना चाहते हैं। अत: मेरा विचार है कि सामान्य वाद-विवाद के लिये केवल आज ही नहीं, बल्कि आज और कल हम बैठें और कल हम पूर्णतया डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर विचार समाप्त कर लेंगे। तत्पश्चात् दो दिन अर्थात् रविवार और सोमवार संशोधनों के लिये रखूंगा और बुधवार से हम बैठेंगे और अनुच्छेदों पर क्रम से विचार करना आरम्भ करेंगे, इस दृष्टि से कि आज के वाद-विवाद में अधिक से अधिक सदस्य भाग ले सकें। मेरी समझ में प्रत्येक सदस्य को बोलने के लिये दस मिनट का समय पर्याप्त होगा। यदि सभा मेरे विचार से सहमत हो, तो मैं समय के बारे में इस प्रतिबन्ध का पालन करूंगा।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, इस आशा में कि शनिवार को अवकाश रहेगा, कुछ सदस्यों ने विधेयक सम्बन्धी प्रवर समितियों (सिलेक्ट कमेटियों) की बैठकों में भाग लेना तथा ऐसे अन्य कार्यों में भाग लेना स्वीकार कर लिया है।

***अध्यक्ष:** समितियों की बैठक इत्यादि के सम्बन्ध में मुझे कोई सूचना नहीं मिली है और जब कि परिषद् की बैठकें हो रही है, समितियों की बैठकों का समय नियत करने में मुझसे परामर्श लेना चाहिये था। इस कारण मैं इस सभा की बैठकों को पौर्विकता दूंगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, नि:संदेह समय का प्रतिबंध तो वांछनीय है, परन्तु मेरा निवेदन है कि यह विषय इतना महत्त्वपूर्ण है कि यदि कोई व्यक्ति इसके केवल एक अंग को ही ले, तो दस मिनट में उसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कह सकेगा; इसलिये मेरा विनम्र निवेदन है कि समय के इस प्रतिबंध का पालन न किया जाये, अन्यथा वाद-विवाद निस्सार हो जायेगा और कोई व्यक्ति किसी विचार को पूरा प्रकट नहीं कर सकेगा। अर्थ सम्बन्धी प्रावधानों पर मुझे स्वयं कुछ कहना है।

***अध्यक्ष:** यदि मुझे यह प्रतीत होगा कि कोई विशेष सदस्य वाद-विवाद में लाभदायक विचार व्यक्त कर रहा है, तो उसके पक्ष में मैं समय के प्रतिबंध को शिथिल कर दूंगा।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि सामान्य वाद-विवाद के लिये दो या तीन दिन और दे दिये जायें, क्योंकि विधान के मसौदे पर विचार करते समय सामान्य वाद-विवाद बड़ा महत्वपूर्ण सिद्ध होगा और विधान के विभिन्न अंगों पर देश के भिन्न-भिन्न भागों की जनता के विचारों से सदस्य परिचय पा सकेंगे। संशोधनों का मसौदा बनाने में तथा यह निश्चय करने में कि किसी विशेष संशोधन को पेश करना है, अथवा नहीं, यह बड़ा सहायक होगा। वास्तव में किसी साधारण कानून के लिये भी सदैव दो या तीन दिन दिये जाते हैं। अर्थ सम्बन्धी बिल पर, जिसका प्रवर्तन-काल केवल एक वर्ष है, सामान्य वाद-विवाद के लिये पांच या छ: दिन दिये जाते हैं। विधान के मसौदे पर सामान्य वाद-विवाद के लिये यदि आप दो या तीन दिन और दे देंगे,

तो वह समय व्यर्थ नहीं जायेगा, बल्कि इससे हमें यह विदित हो जायेगा कि हम विषय के विभिन्न अंगों पर भिन्न-भिन्न सदस्यों की क्या विचारधारा है। अत: मैं निवेदन करता हूं कि आप सामान्य वाद-विवाद के लिये हमें कृपया दो या तीन दिन और दे दें।

***श्री के. हनुमन्थय्या** (मैसूर): श्रीमान्, तीन सौ सदस्यों की सभा के लिये दो दिन बहुत कम होंगे। केवल दस सदस्य बोल सकेंगे और सब वर्ग वाद-विवाद में भाग नहीं ले सकेंगे। पांच दिन भी कम रहेंगे।

***श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि समस्त विधान पर सामान्य वाद-विवाद अधिक लाभदायक नहीं होगा। कोई भी व्यक्ति 45 मिनट या एक घंटे से कम समय में लाभप्रद विचार प्रकट नहीं कर सकेगा। अत: मैं सुझाव रखता हूं कि प्रत्येक अनुच्छेद पर विचार करने के पूर्व हम उस अनुच्छेद पर संक्षिप्त सामान्य वाद-विवाद कर लें और फिर उसे पास करें। अत: समस्त विधान पर वाद-विवाद की अपेक्षा इस प्रकार से हमारा सामान्य वाद-विवाद अधिक लाभदायक हो सकेगा।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से इस बात पर वाद-विवाद करने में कि हम किस प्रकार विचार करें, अधिक समय व्यतीत करना उपयुक्त न होगा। हम विचार करना आरम्भ करें और फिर देखेंगे कि क्या करना ठीक है।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मैं अपने मित्र श्री सन्तानम् के सुझाव का समर्थन करता हूं। मैं यह भी बता देना चाहता हूं कि अभी तक बहुत से प्रलेख सदस्यों के पास नहीं पहुंचाये गये हैं। उदाहरणस्वरूप सीमा-समिति की रिपोर्ट हमें अभी तक नहीं मिली है। कुछ प्रलेख मसौदा-समिति को मिल गये थे, उनको भी देखने का सभा को अधिकार है; उदाहरणस्वरूप विधान के मसौदे पर प्रांतीय सरकारों की सम्मतियां और न्यायधीश-वर्ग से सम्बन्धित विभिन्न प्रावधानों पर फेडरल कोर्ट और हाई कोर्टों के विचार। अनेकों बातों के ऐसे कानूनी पहलू

[श्री बी. दास]

हैं जिनको हमें जानना चाहिये इसलिये फेडरल कोर्ट और हाई कोर्टों के विचार बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। ये प्रलेख हमें मिल जाने चाहियें, तभी हम आगे वाद-विवाद कर सकेंगे।

***अध्यक्ष:** आगामी सोमवार या मंगलवार तक सदस्यों को प्रांतीय सरकारों, हाई कोर्टों और अन्य ऐसी प्रमुख संस्थाओं की सम्मतियां देने का हम प्रयत्न करेंगे।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त तथा बरार : जनरल): श्रीमान्, मैं एक बात जानना चाहता हूं। आपने कहा कि जिस प्रस्ताव की सूचना सेठ दामोदरस्वरूप ने दी है, आप उसे पेश करने की उन्हें आज्ञा देंगे। कल मौलाना हसरत मोहानी ने ऐसा ही प्रस्ताव पेश किया था। क्या मैं यह जान सकता हूं कि यह प्रस्ताव सामान्य उस वाद-विवाद से पृथक लिया जायेगा, जिसके लिये आपने दो दिन दे दिये हैं?

***अध्यक्ष:** इन दो प्रस्तावों पर वाद-विवाद समाप्त होने के सद्य: पश्चात् मैं स्थगन प्रस्ताव पर मत लूंगा और उसके पश्चात् हम सामान्य वाद-विवाद आरम्भ करेंगे।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त तथा बरार : जनरल): मैंने मूल प्रस्ताव पर संशोधन की सूचना दी है।

***अध्यक्ष:** स्थगन प्रस्ताव को समाप्त करने के पश्चात् हम उसे लेंगे।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): 4 नवम्बर के स्टेट्समैन में यह प्रकाशित हुआ है कि प्रस्तावना पर अन्त में वाद-विवाद होगा और मत-दान लिया जायेगा। आपने जो कुछ कहा, उससे मैं यही समझा कि आप उसी मार्ग का अनुसरण करेंगे। यदि ऐसा है...

***अध्यक्ष:** समाचार पत्र जो कुछ प्रकाशित करते हैं, उससे मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं है।

***मौलाना हसरत मोहानी:** आपने कल यह कहा था कि इस विषय पर अभी निश्चय किया जायेगा और यह भी कहा था कि इसको फिर नहीं लिया जायेगा। आपका आशय क्या यही है कि प्रस्तावना पर अभी विचार होगा।

***अध्यक्षः** मैंने प्रस्तावना या विधान के किसी भाग के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा।

***मौलाना हसरत मोहानीः** प्रस्तावना पर संशोधन मैं अभी पेश करना चाहता हूं।

***अध्यक्षः** अभी प्रस्तावना या विधान के किसी भाग पर संशोधन नहीं रखा जा सकता है। यथासमय हम सब संशोधनों पर विचार करेंगे।

श्री दामोदर स्वरूप सेठः सदर साहब, आपकी इजाजत से जो अमेंडमेंट हाउस के सामने पेश करने जा रहा हूं, वह यह है:

> ''Whereas the present Constituent Assembly was not elected on the basis of adult franchise and whereas the final Constitution of free India should be based on the will of the entire people of India, this Constituent Assembly resolves that while it should continue to function as Parliament of the Indian Union, necessary arrangements should be made for convening a new Constituent Assembly to be elected on the basis of adult franchise and that the Draft Constitution prepared by the Drafting committee be placed before it for its consideration and adoption with such amendments as it may deem necessary.''

सदर साहब, इस अमेंडमेंट पर कुछ कहने से पहले मैं यह कह देना जरूरी समझता हूं कि मैंने एक अलग प्रस्ताव इस आशय का भेजा था कि ड्राफ्ट कांस्टीट्यूशन पर फिलहाल विचार स्थगित कर दिया जाये। लेकिन मेरी बदकिस्मती से किसी वजह से मेरा वह रिजोल्यूशन एडमिट नहीं हुआ। इसलिए मेरे पास सिवाय इसके कोई दूसरा चारा नहीं था कि उस रिजोल्यूशन के आशय का मैं अमेंडमेंट पेश करूं।

सदर साहब, कल जब मौलाना हसरत मोहानी साहब ने अपना अमेंडमेंट पेश किया था, तो मैंने अफसोस के साथ यह बात देखी थी कि इस हाउस के कुछ आनरेबल मेम्बर उसका मज़ाक उड़ा रहे थे और उसके साथ एक तरह की खिलवाड़ भी कर रहे थे...

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): (*श्री दामोदरस्वरूप के भाषण के बीच में बोलते हुये*) अध्यक्ष महोदय, मैं माननीय सदस्य से जो कि इस प्रस्ताव को

[श्री एस. नागप्पा]

पेश कर रहे हैं, यह जानना चाहता हूं कि जब उनका इस महान सभा के लिये निर्वाचन हुआ था, क्या उस समय उन्होंने इस सभा को ऐसी सर्वोच्च संस्था माना था, या नहीं, जो विधान-परिषद् के रूप में कार्य करने की क्षमता रखती है। यदि नहीं माना, तो वे सदस्य क्यों हुये? (*हंसी*)

***अध्यक्ष:** यह औचित्य प्रश्न नहीं है।

***श्री एस. नागप्पा:** मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या उनका यह कहना नियमानुसार है कि यह सभा विधान-परिषद् नहीं है और वयस्क मताधिकार के आधार पर एक नई परिषद् का निर्माण होना चाहिये?

***अध्यक्ष:** अपने प्रस्ताव को पेश करने में वे कोई नियम विरुद्ध कार्य नहीं कर रहे हैं।

श्री दामोदर स्वरूप सेठ: सदर साहब, मैं यह अर्ज कर रहा था कि किसी रिजोल्यूशन या अमेंडमेंट के आशय की हंसी उड़ाना उसके समर्थकों के विचारों की हंसी उड़ाना, यह तो एक आसान बात है, लेकिन वास्तविकता को समझना और उसको एप्रीशिएट करना, इसके लिए कुछ साहस की जरूरत होती है। हो सकता है और मुझे इस बात का डर है कि मेरे इस अमेंडमेंट से भी शायद मेरे कुछ साथियों को नाराजगी होगी, लेकिन हर आदमी के सामने उसका कुछ फर्ज होता है। और बगैर उसके नतीजे का ख्याल करते हुए, बगैर इस बात का ख्याल करते हुए कि लोग उसके मुताल्लिक अपनी क्या राय रखेंगे, हर इंसान का फर्ज होता है कि जो उसकी आत्मा की आवाज़ हो, जो उसके जमीर की आवाज़ हो, उसको वह दूसरे लोगों के सामने बेधड़क रखे, क्योंकि सदर साहब, मैं जानता हूं कि कौमों की ज़िन्दगी में और इन्सानों की जिन्दगी में भी एक वक्त ऐसा आता है कि जब उन्हें कड़वी से कड़वी दवा को अपने गले से नीचे उतारना पड़ता है। मैं समझता हूं कि ड्राफ्ट कांस्टीट्यूशन के विचार करने के सम्बन्ध में भी हमारे देश में आज यही स्थिति है और इसलिए हमें इस बात के ख्याल करने की जरूरत नहीं होनी चाहिए कि हमारे ख्यालात किसी को पसन्द आते हैं, या नहीं पसन्द आते हैं। हमें तो अपना फर्ज अदा करना है। तो सबसे पहले मैं इस बात पर रोशनी डालने की कोशिश करूंगा कि यह कांस्टीट्यूएंट असेम्बली जो

आज यहां बैठी हुई है और जो इस ड्राफ्ट कांस्टीट्यूशन पर विचार करके उसको पास करने जा रही है, इसका रिप्रेजेंटेटिव करैक्टर कितना है? सदर साहब, किसी आज़ाद मुल्क की कांस्टीट्यूशन मैकिंग बाडी के लिये इस बात की सबसे पहले जरूरत है, वह यह है कि वह बाडी इस बात का दावा कर सके कि वह उस मुल्क के तमाम अवाम की राय का इजहार कर रही है। सदर साहब, मैं आपकी इजाजत से यह बात पूछना चाहूंगा कि इस हाउस के अन्दर बैठे हुए हमारे आनरेबल मेम्बर क्या अपनी छाती के ऊपर हाथ रखकर दावे के साथ यह बात कह सकते हैं कि वह तमाम हिन्दुस्तान के लोगों की नुमायन्दगी इस हाउस में कर रहे हैं? मैं पूरे जोर के साथ यह बात कह सकता हूं कि यह हाउस सारे मुल्क की नुमायन्दगी का दावा नहीं कर सकता। ज्यादा से ज्यादा यह दावा कर सकता है कि हिन्दुस्तान की आबादी के कुल 15 फीसदी उन लोगों की नुमायन्दगी का कि जिनके आधार पर हमारे मुल्क के सूबों के लेजिस्लेचरों का चुनाव हुआ था। और यह चुनाव भी जिसके जरिये से इस हाउस के मेम्बर यहां पर बैठे हैं, एक सीधा चुनाव नहीं था, वह भी इन्डाइरेक्ट चुनाव के जरिए से यहां पर आए हैं। ऐसी हालत में जब कि मुल्क के 85 फीसदी आदमियों की नुमायन्दगी इस हाउस में नहीं है, यह कहना कि यह हाउस सारे मुल्क की विल को रिप्रेजेंट करता है—जब कि 85 फीसदी लोगों की यहां पर कोई आवाज ही नहीं है, उनकी कोई नुमायन्दगी नहीं है—यह कहना इस हाउस के लिए कि यह सारे मुल्क के लिए कांस्टीट्यूशन बनाने के लिये कांपीटेन्ट है, यह मेरी राय में बहुत हद तक एक गलत बात होगी। उसके अलावा हमें यह भी देखना है कि यह जो ड्राफ्ट कांस्टीट्यूशन इस हाउस के सामने आ रहा है, इसके रिप्रेंजेंटेटिव के अलावा इसका नेचर क्या है। हमने यह देखा है कि इस कांस्टीट्यूशन में यूनाइटेड स्टेट आफ अमेरिका और ब्रिटेन के कांस्टीट्यूशन की नकल की गयी है। इसमें कुछ दफ़ायें आयरलैंड, आस्ट्रेलिया और कनाडा के कांस्टीट्यूशन से भी ली गई है। एक अखबार ने शायद यह ठीक ही लिखा था कि यह इन मुल्कों के कांस्टीट्यूशन का एक 'स्लैविश इमिटेशन' है।

सदर साहब, जो हालात अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा या आस्ट्रेलिया में थे, वह हमारे मुल्क के अन्दर नहीं है। हमारे मुल्क के अन्दर की हालत का मुकाबला अगर किसी से किया जा सकता है, तो वह रूस से किया जा सकता है, उस

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

रूस से जो सोवियत रिपब्लिक के बनने से पहले का रूस था। इसके अलावा हमारे मुल्क में 7 लाख गांव हैं और गांव हमारे मुल्क का सबसे बड़ा यूनिट है। महात्मा गांधीजी की कृपा से हमारी आज़ादी की लड़ाई गांव तक पहुंच गयी थी और गांवों के आधार और बल पर ही आज हिन्दुस्तान आज़ाद हुआ है।

मैं यह पूछना चाहता हूं कि इस बड़े कांस्टीट्यूशन के स्ट्रक्चर में आज जो हमारे सामने हैं, उसमें कहीं भी गांव का कोई जिक्र है और कहीं उसकी कोई तस्वीर है? नहीं, कहीं नहीं। किसी आज़ाद मुल्क का कांस्टीट्यूशन का आधार होना चाहिए—''लोकल सैल्फ गवर्नमेंट''। हमें इस कांस्टीट्यूशन में लोकल सैल्फ गवर्नमेंट के बारे में कहीं भी कोई बात नहीं दिखाई देती। यह सारा कांस्टीट्यूशन बजाय अन्दर और नीचे से खड़ा करने के ऊपर से और बाहर से खड़ा किया जा रहा है और ऐसा कोई स्ट्रक्चर जो बाहर से और ऊपर से खड़ा किया जाये और जिसमें यूनिटों का कोई आधार और उनकी आवाज न हो, जिसमें हिन्दुस्तान के हजारों और लाखों गांव का कोई भी जिक्र नहीं है, आप इस कांस्टीट्यूशन को इस मुल्क को दे सकते है; मगर इसको ज्यादा दिनों तक आप अच्छी तरह से चला सकेंगे, इसमें मुझे शक है।

सदर साहब, होना यह चाहिए था कि हमारे हिन्दुस्तान की रिपब्लिक की वह सारे ओटोनोमस रिपब्लिक आपस में मिलकर एक यूनियन के रूप में हिन्दुस्तान की, एक बड़ा रिपब्लिक बनाते। इस तरह के ओटोनोमस रिपब्लिक होने से न लिंगविस्टिक प्राविंसेज का सवाल उठता है और न कम्यूनल मैजोरिटी और न माइनोरिटी का सवाल उठता है और न बैकवर्ड क्लासेज का सवाल उठता है। इस यूनियन में जो-जो ओटोनोमस यूनिट होते, वह अपने-अपने कलचर के मुताबिक जिस यूनियन के साथ चाहते, उसके साथ अपना नाता जोड़ सकते थे। इस तरह से जो यूनियन हमारे मुल्क में बनती, वह वाकई ऐसी यूनियन बनती, जिसमें हमें सेन्ट्रलाइजेशन पर इतना जोर देने की जरूरत नहीं होती, जितना हमारे काबिल डॉ. अम्बेडकर साहब ने दिया है। सेन्ट्रलाइजेशन एक अच्छी चीज है और वक्त पर यह भी काम आती है। लेकिन हम भूल जाते हैं कि जिन्दगी भर महात्मा गांधीजी ने इस बात पर जोर दिया कि ''पावर का ज्यादा सेन्ट्रलाइजेशन करना'' उस पावर को टोटलिटेरियन बना देता है और उस पावर के फासिज़्म के आदर्श

पर जाता है। उस फासिज़्म और टोटलिटेरियनिज़्म को रोकने का एक ही तरीका है और वह यह है कि ज्यादा से ज्याादा हम पावर को सेन्ट्रलाइज करें। इस तरह से हम हृदय से ऐसा सेन्ट्रलाइजेशन आफ पावर करेंगे कि जिसका मुकाबला दुनियां में कोई नहीं कर सकता। लेकिन कानून के जरिये से पावर को सेन्ट्रलाइजेशन करने का कुदरती नतीजा यह होगा कि हमारे मुल्क में, जो अब तक फासिज़्म का बराबर विरोध करता रहा है, और आज भी जिस फासिज़्म के विरोध की हम जोर से दुहाई देते हैं, वह धीरे-धीरे फासिज़्म की तरफ चला जायेगा। इसलिए साहबे सदर, मैं चाहता हूं कि इन बातों पर यह हाउस काफी सन्जीदगी के साथ गौर करे। यह मामला कोई मामूली मामला नहीं है। इस कांस्टीट्यूशन के बनाने में हम कोई खिलवाड़ नहीं कर रहे हैं, बल्कि एक बड़ा अहम कदम उठा रहे हैं। सैकड़ों नहीं शायद हजारों वर्ष के बाद, बल्कि मैं यह कहूंगा और उसमें कोई मुतालबा नहीं होगा कि हिन्दुस्तान की तारीख में पहली मर्तबा हमको यह मौका मिला है कि हम सारे हिन्दुस्तान का कांस्टीट्यूशन बनाने जा रहे हैं इसलिए हम इस पर जितना गौर-खोज करें, उतना कम है। यह कहा जा सकता है और कहा गया है कि इस कान्स्टीट्यूशन को आप पास हो जाने दीजिये, फिर एडल्ट फ्रेन्चाइज़ के जरिये से जो नई असेम्बली बने, उसे पूरा अधिकार होगा कि वह अमेंडमेंट पेश करके उसमें जरूरी संशोधन कर दे। लेकिन साहिबे सदर, इस कान्स्टीट्यूशन के एक बार बन जाने के बाद उसमें फिर अमेंडमेंट पेश करने में कानूनी पेचीदगियां पैदा होंगी और हमारे लिए यह कोई फक्र नहीं होगा कि हिन्दुस्तान की तारीख से एक बड़ा अहम काम जो हमारे सुपुर्द हुआ, उसको हम अधूरा करके दूसरों के ऊपर छोड़ दें। आयन्दा आने वाली नस्ल हमारे इस रवैये पर अफसोस ही करेगी। इसलिए जो ड्राफ्ट कांस्टीट्यूशन हमारे सामने है, उसके रिप्रेजैन्टेटिव करैक्टर और उसके नेचर और बनावट दोनों तरफ देखने से हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि मौजूदा कांस्टीट्यूशन हमारे लिए, आज की हालत के लिए, हमारी संस्कृति के लिए, हमारे देश के रस्म-रिवाज के अनुकूल नहीं है। इसलिए जरूरत इस बात की है कि फिलहाल इसके ऊपर विचार करना हम स्थगित कर दें और एक नई कांस्टीट्यूशन असेम्बली एडल्ट फ्रेचाइज के आधार पर बनायें, ताकि वह इस कान्स्टीट्यूशन पर निगाह डाले, उस पर विचार करे और जरूरत के मुताबिक उसमें अमेंडमेंट करे। जब तक इस तरह की नई कान्स्टीट्यूशन असेम्बली बने, उस वक्त तक मौजूदा कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली पार्लियामेंट का काम कर सकती

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

हैं और उसमें हम नहीं चाहते हैं कि किसी तरह की रुकावट हो। इसमें शक नहीं कि हमको इस काम को करने में दो वर्ष लग गये और सालभर और करीब-करीब इतना ही वक्त और लग जाये। लेकिन मुल्क की जिन्दगी में साल दो साल कोई चीज नहीं होती है। जब तक यह कान्स्टीट्यूशन मुकम्मिल न हो, हम अपना काम जिस तरह से आज तक चल रहे थे, उसी तरह से चला सकते हैं। लेकिन जैसा मैंने कहा है कि आज हम मुत्तहदा हिन्दुस्तान का कान्स्टीट्यूशन बनाने जा रहे हैं, तो वह कान्स्टीट्यूशन एक नया और आदर्श कान्स्टीट्यूशन होना चाहिये।

आज हिन्दुस्तान के आज़ाद होने के बाद मुझे आपको यह बतलाने की जरूरत नहीं है कि दुनियां की आंखें हिन्दुस्तान की तरफ लगी हुई हैं। वह तो हिन्दुस्तान से कोई नई चीज चाहती है। ऐसे वक्त में जरूरत इस बात की थी कि जो हमारा ड्राफ्ट कान्स्टीट्यूशन होता, वह इस तरह का कान्स्टीट्यूशन होता, जिसको कि हम दुनियां के सामने एक आदर्श की शक्ल में रख सकते। बजाय इसके कि हमने दूसरे मुल्कों के कान्स्टीट्यूशनों की नकल करके दूसरे मुल्कों के कान्स्टीट्यूशनों का कुछ हिस्सा लेकर अपने मुल्क का एक कान्स्टीट्यूशन खड़ा कर दिया, और जैसा कि मैंने पहले कहा था, वह कान्स्टीट्यूशन का ढांचा भी हमने इस तरह का खड़ा किया है, जो मालूम होता है कि ऊपर से खड़ा किया गया है, नीचे से नहीं खड़ा किया गया है। हिन्दुस्तान के हजारों, लाखों गांवों का इसमें कोई हिस्सा नहीं है और इसमें उनकी कोई आवाज़ नहीं है। और मुझे यह कहने में जरा भी संकोच नहीं है कि अगर हिन्दुस्तान में लाखों गांवों के एडल्ट फ्रेन्चाइज के आधार पर हिस्सा मिला होता, इस कान्स्टीट्यूशन के ड्राफ्ट करने में, तो इसकी शक्ल शायद आज की शक्ल से बिल्कुल मुख्तलिफ हुई होती। आज हमारे मुल्क में गरीबी क्या गजब ढा रही है। लोग किस तरह से भूखे-नंगे हैं। जरूरत थी, इस कान्स्टीट्यूशन में इस बात की कि फन्डामैंटल राइट्स में यह बात शामिल की जाती कि हर आदमी को काम मिलने का, काम पाने का अधिकार होगा। हर आदमी को खाने और पहनने की फिकरों से छुट्टी मिल जायेगी। हर आदमी के लिए तालीम हासिल करना, उसका हक होगा। यह सारी बातें फन्डामैंटल राइट्स में शामिल होनी चाहिए थीं। लेकिन सदर साहब, मैं आपसे क्या अर्ज करूं। हमारे आनरेबिल डॉ. अम्बेडकर साहब ने अपनी स्पीच में खुद इस बात को महसूस

किया है और कहा है कि फन्डामैंटल राइट्स के बारे में बहुत से ऐतराज किये गए हैं। डाक्टर साहब की दलील के बावजूद मैं यह समझने से मजबूर हूं कि फन्डामैंटल राइट्स और दूसरे राइट्स बिल्कुल एक ही चीज हैं। मैं तो समझता हूं कि फन्डामैंटल राइट्स ऐसी चीज हैं, जो किसी से छीनी नहीं जा सकती, जिसको छीनना गवर्नमेंट की ताकत से बाहर है। वह तभी छीने जा सकते हैं, जब कोई अदालत किसी जुर्म के बदौलत किसी आदमी को कोई सज़ा दे। वरना, अगर फन्डामैंटल राइट्स हुकूमत की मर्जी पर छीने जा सकते हैं, तो फन्डामैंटल नहीं रह जाते हैं। इन बातों के मेरे कहने का सदर साहब, मतलब यह है कि अगर इस कान्स्टीट्यूशन के बनाने में देश के हजारों गांवों का हिस्सा होता, देश के गरीब तबके का, लोगों का, हिन्दुस्तान के मजदूरों का हिस्सा होता, तो इस कान्स्टीट्यूशन की शक्ल आज की शक्ल से बिल्कुल मुख्तलिफ हुई होती। इसलिए सदर साहब, मैं आपकी इजाजत से इस हाउस से यह दरख्वास्त करना चाहूंगा कि वह इस कान्स्टीट्यूशन को मामूली मामला न समझ कर, इसे एक तारीखी चीज समझ कर इसके ऊपर जरूरी ध्यान दें। और आपसे यह दरख्वास्त करूंगा कि फिलहाल इस कान्स्टीट्यूशन के ऊपर विचार करना मुल्तवी किया जाये और मुल्क को एक मौका और दिया जाये, ताकि जो कान्स्टीट्यूशन बने वह हिन्दुस्तान के अवाम का कान्स्टीट्यूशन बने। इन शब्दों के साथ मैं इस अमेंडमेंट सम्बन्धी अपनी बात को खत्म करता हूं।

अध्यक्षः यह आपके सामने आयेगा। अब इस पर जो साहब बोलना चाहें, बोल सकते हैं।

श्री बालकृष्ण शर्माः सभापति महोदय, मेरे मित्र सेठ दामोदरस्वरूप जी ने आज इस सभा के सन्मुख यह प्रस्ताव उपस्थित किया है कि हमें इस समय जो भी विधान की रूपरेखा उपस्थित हुई है, उस पर विचार करना स्थगित कर देना चाहिए। और उन्होंने अपने प्रस्ताव के पक्ष में एक तर्क उपस्थित किया है। इन तर्कों के ऊपर विचार करने के पूर्व में एक-दो मुख्य बातों के ऊपर इस सभा का ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा। पहली बात जो मेरे सन्मुख उपस्थित होती है, वह यह है कि मेरे मित्र जिन्होंने कि यह प्रस्ताव उपस्थित किया है, यह विशुद्ध अवांछनीय है, क्योंकि आखिर हम यहां किसलिए बैठे हैं। विधान बनाने के लिए चुनकर हम लोग इस सभा में पधारे हैं। एक बार जिस राजनैतिक दल के वह सदस्य हैं, उस दल ने यह निर्णय किया कि यह विधान-परिषद् एक स्वतंत्र सत्ता धारण करने वाली संस्था नहीं है इसलिए हमें इसका बहिष्कार करना चाहिए। फिर उनके दल ने

[श्री बालकृष्ण शर्मा]

न जाने क्या सोचकर कहा कि आज इसमें हमें जाना चाहिये, जिसमें कि वह स्वयं चुनकर यहां आये। उस समय उनके दल के कुछ आदमी नहीं आये और उसके बाद फिर न जाने क्या समझकर उनके दल के आदमियों ने कुछ भाग लेना प्रारंभ किया। अब आप देखिये कि जिस समय जिस दल की या जिस व्यक्ति की नीति इस प्रकार से क्षण-क्षण में परिवर्तित होती जाती है—''क्षणे रुष्टाः, क्षणे तुष्टाः, रुष्टाःतुष्टाःक्षणे क्षणे''। तो इसके लिए क्या कहा जाये? मैं समझता हूं कि यह बुद्धि हमारे सेठ दामोदरस्वरूप जी को बहुत देर के बाद जागृत हुई कि हमको यहां पर बैठकर विधान न बनाना चाहिये और उन्होंने जो अपना तर्क दिया है, वह मेरी क्षुद्र बुद्धि में इतना लंगडा, इतना लूला, इतना बहरा और इतना अन्धा है, जिसकी कि कोई सीमा नहीं है। पहला तर्क तो उनका यह है कि हमारा, अर्थात् इस विधान-परिषद् का स्वरूप प्रतिनिधात्मक स्वरूप नहीं है। मैं निवेदन करना चाहूंगा कि जनतंत्र का एक हास्यास्पद स्वरूप भी होता है और वह हास्यास्पद स्वरूप जनतंत्र का प्रकट होता है। इस समय जब हम जनतंत्र को बिल्कुल प्रतिनिधात्मक बनाने के लिए प्रोपोर्शनल रिप्रेजैंटेशन के ऐसी वस्तु का निर्माण करते हैं और इसके परिणामस्वरूप फासिज़्म को लाकर अपने बीच में उपस्थित कर लेते हैं। जर्मनी में, इटली में, फ्रांस में जिन स्थानों पर जनतंत्र को इस रूप में चलाने का प्रयास किया गया, तो उसका एकमात्र परिणाम यह हुआ कि वह फासिज़्म में परणित हो गया, और आज यह पन्द्रह प्रतिशत और पच्चीस प्रतिशत कह कह करके कि हम केवल पन्द्रह प्रतिशत आदमियों के प्रतिनिधि हैं, 85 प्रतिशत आदमी इसमें प्रतिनिधि के रूप में हमारे साथ नहीं है। इसलिए हमें इस पर विचार करना स्थगित कर देना चाहिये। यह कहना एक कुतर्क है; कुतर्क इसलिये है कि संसार में कहीं भी कोई आदर्शात्मक परिषद् स्थापित नहीं हो सकती। एक व्यावहारिक परिषद् में जिसमें हमने सारे के सारे देश का प्रतिनिधित्व किया, तो क्या हम यह कह सकते थे कि जिस कांग्रेस के सदस्य कुछ दिनों के पहले तक हमारे सेठ जी रहे हैं, क्या वह इस प्रकार के संघ-निर्माण के आधार पर यह कह सकते थे कि वह कांग्रेस समूचे के समूचे भारतवर्ष की प्रतिनिधि संस्था है और फिर भी संस्था के रूप में न कह सकने पर भी मेरे मित्र सेठ जी बराबर अपने आपको भारतवर्ष का खुदाई फ़ौजदार समझते रहे हैं। और आज भी किसी गरीब ने, किसी किसान ने, मजदूर ने एक-दो भारतवर्ष का वोट देकर उन्हें भारतवर्ष के प्रतिनिधित्व

में नहीं भेजा है, लेकिन फिर भी वह अपने आपको प्रतिनिधि कहते हैं। इसका कारण क्या है? वह जो रूसी भाषा में एक शब्द कहा गया है कि ''वी आर दी विल आफ दी पीपुल'' हम सर्वसाधारण की इच्छा हैं, हम सर्वसाधारण की भावनाओं के और आकांक्षाओं के प्रतिनिधि हैं, इस रूप में हम सारे भारत के प्रतिनिधि के रूप में एकत्रित होकर अपना विधान निर्माण कर रहे हैं। इसलिए 15 प्रतिशत और 85 प्रतिशत के कुतर्क को उठाना, मैं समझता हूं, अनुचित बात है।

दूसरी बात जो उन्होंने उठाई है, वह यह है कि हमारे इस विधान में हमने बहुत-सी बातें दूसरे-दूसरे देशों से उधार ली है। मेरा अनुमान है कि इसका बहुत सुन्दर उत्तर मान्यवर डॉ. अम्बेडकर अपने कल के भाषण में दे चुके हैं। मैं केवल इतना कह देना चाहता हूं कि यदि हमारे मित्र अत्यधिक मौलिकता के पीछे, मोरिजैनिलिटी के पीछे जाने का प्रयास करेंगे, जैसा कि मेरा अनुमान है, कदाचित श्री दामोदरस्वरूप जी का प्रयास है कि वह अत्याधिक मौलिक होने का प्रयास करेंगे, तो वह अपने आपको हास्यास्पद बना लेंगे। इसलिए जिस समय वह मौलिकता की बातें करते हैं, उस समय भी विशुद्ध रूप से वह मौलिक नहीं है। वह रूस की तरफ देखते हैं कि आपने रूस का अनुगमन नहीं किया। अर्थ यह हुआ कि यदि हम रूस का अनुगमन करते, तो हम मौलिक होते और चूंकि हमने आस्ट्रेलिया, कनाडा, यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन के विधान का अनुगमन किया है, किंवा हमने उससे वस्तुयें ली हैं, किंवा हमने उससे किसी प्रकार की प्रेरणा प्राप्त की है, इसलिए हम मौलिक नहीं है। तो अब यह दो प्रकार के अनुगमनों में से आपको और हमको चयन करने की बात है। सेठजी और मौलाना हसरत मौहानी रूस की तरफ झुकना चाहते हैं। हम में से कोई भी आदमी रूस के विरुद्ध नहीं है। हम लोग रूस की मित्रता के पक्षपाती हैं। रूस जो एक महान प्रयत्न कर मानव को संगठित कर रहा है, उसको हम बहुत रुचि और सहानुभूति के साथ देख रहे हैं; किन्तु यह बात निश्चित है कि बड़े विषयों में जिस नीति का अनुसरण करके वह व्यक्ति को स्टेट के लिए, राज्य के लिए समाप्त या विनष्ट कर देना चाहता है, उसको हम स्वप्न में भी स्वीकार नहीं कर सकते। सेठजी ने उदाहरण दिया, महात्मा गांधीजी का। महात्मा गांधी अतिकेन्द्रीकरण, ओवर सैन्ट्रलाइजेशन के विरुद्ध थे। मेरे मित्र को यह पता होना चाहिए कि इसेन्शियली

[श्री बालकृष्ण शर्मा]

महात्मा गांधी वाज़ ए एनार्किस्ट। महात्मा गांधी एक फिलासाफिकल अनार्किस्ट, एक अराजकतावादी थे। तत्व रूप से वह अराजकता को हितकर समझते थे, क्योंकि वह व्यक्ति को इतना ऊंचा बना देना चाहते थे, जहां उसे किसी प्रकार के बाह्य नियंत्रणों की आवश्यकता न हो। हम और आप इतने ऊंचे प्राणी नहीं हैं। हमारे लिए अराजकतावाद और महात्मा गांधी के शब्दों को दुहरा कर उनके अनुसार कार्य करने का प्रयास हास्यास्पद होगा, और इसलिए महात्मा गांधी के शब्द यहां पर दुहराना व्यर्थ है, और अपने पक्ष-समर्थन के लिए महात्मा गांधी का नाम लेकर सेठजी ने कोई विशेष तार्किकता का परिचय नहीं दिया। वह पूछते हैं कि हमारे इस विधान में गांवों का स्थान कहां है, मजदूरों का स्थान कहां है, हमारे इस विधान में किसानों का स्थान कहां है, हमारे इस विधान में स्थानीय स्वायत्त शासन, लोकल सेल्फ गवर्नमेंट का स्थान कहां है। मैं बहुत विनम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहता हूं कि यदि वह ध्यानपूर्वक समूचे विधान का अध्ययन करने का प्रयास करेंगे, तो उनको यह व्यक्त होगा कि आज भी हम अपने इस विधान के निर्माण करते समय महात्मा गांधी की उस पुण्य प्रेरणा को विस्मृत नहीं कर रहे हैं कि जिससे प्रेरित होकर उन्होंने हमें यह सन्देश दिया था कि भारतवर्ष का निवास शहरों में नहीं है, बल्कि इस देश के सात लाख गांवों में है और इसलिए सभापति महाशय, मैं सेठजी के इस प्रस्ताव का विरोध करता हूं और मुझे विश्वास है कि यह गृह उनके इस प्रस्ताव को ठुकराने के लिए किसी प्रकार की हिचकिचाहट का अनुभव न करेगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, सेठ दामोदरस्वरूप के संशोधन-प्रस्ताव को इतनी सरलता से नहीं टालना चाहिये, जैसे कि मेरे माननीय मित्र श्री बालकृष्ण ने टाला है। जब केबिनेट मिशन भारत में था, उस समय हमने स्वयं यह चाहा था कि इस परिषद् का निर्वाचन वयस्क मताधिकार द्वारा होने चाहिये; किन्तु अंग्रेज वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचन कभी नहीं चाहते थे। उन्होंने निर्वाचन के इस तरीके को हम पर लादा। यदि वे हमारी मांग स्वीकार कर लेते, तो हमारा निर्वाचन वयस्क मताधिकार द्वारा होता। सेठ दामोदर स्वरूप भली प्रकार जानते हैं कि कांग्रेस पार्टी, जिसका इस सभा में बहुमत है, इस बात का स्वागत करती। जो विषय उन्होंने लिया है, वह मौलिक है और हम सबको यह मान लेना चाहिये कि वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित परिषद् ही

वास्तविक विधान-परिषद् होगी। यद्यपि मुझे पूरा विश्वास है कि ये ही सदस्य बहुमत में फिर आयेंगे; परन्तु इस समय प्रश्न व्यावहारिकता का है। प्रश्न यह है कि क्या हम यह कर सकते हैं कि सभा को अब स्थगित कर दें और विधान-परिषद् के नये चुनावों के लिये एक वर्ष तक प्रतीक्षा करें और तत्पश्चात् अपना विधान बनायें? मेरे विचार में वर्तमान विधान जिसको एक विदेशी परिषद् ने बनाया है, ऐसा है कि यदि मेरा बस चले तो मैं उसके अंतर्गत एक मिनट भी न रहूं; अत: मेरा विचार है कि इस समय तो हम संविधान के इस प्रारूप पर अपना विचार जारी रखें, किन्तु जब संविधान में संशोधन सम्बन्धी अध्याय पर पहुंचें, तो प्रथम दस वर्षों के अन्दर संविधान में संशोधन करने की रीति को उससे कहीं अधिक आसान बना दें, जितनी कि वह उस प्रारूप के अनुसार हैं मेरी समझ में तो यह ठीक होगा कि हम यह संभव कर दें कि संविधान में दो तिहाई बहुमत के स्थान पर केवल साधारण बहुमत से संशोधन किया जा सके।

सेठ जी ने और बातें भी कही हैं। उन्होंने कहा है कि यह विधान ग्रामों को कोई महत्व नहीं देता है। उनके मन में सोवियत विधान की बात भी है। महात्मा गांधी जी का विधान जिसकी रूपरेखा श्री एस.एन. अग्रवाल ने दी थी, ग्राम-गणराज्य अथवा ग्राम-पंचायत पर आश्रित था; और मेरे विचार से विधान के उस अंग पर हमें सावधानी से विचार करना होगा। डा. अम्बेडकर से यह सुनकर मुझे दु:ख हुआ कि वे उस प्रणाली से घृणा करते हैं, जिसमें ग्रामों की इच्छा सर्वोपरि मानी जाती है। मेरे विचार से हमें उस भाग का उचित संशोधन करना पड़ेगा। यह परिषद् अब अपना कार्य आरंभ कर रही है और इसे सम्पूर्ण विधान को बदल देने का अधिकार है। सेठ जी ने आज अपना संशोधन रख दिया है। उस पर हम खुशी से वाद-विवाद करेंगे। मेरे विचार से केवल सेठ जी के ही ऐसे विचार नहीं है। हमें इन बातों को यों ही नहीं टाल देना चाहिये जैसा कि मेरे पूर्व वक्ता ने किया है। इस परिषद् में से विधान के प्रत्येक अंग पर हमें गंभीरता से विचार करना चाहिये और प्रत्येक व्यक्ति के साथ आदरपूर्वक व्यवहार होना चाहिये। और बातें जो उन्होंने कही है, उन पर उपयुक्त समय पर वाद-विवाद किया जा सकता है। उन्होंने कहा है कि इस विधान में स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के लिये कोई प्रावधान नहीं है। यह एक महत्त्वपूर्ण चीज है, जिसका विधान में समावेश

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

करना चाहिये और इस विधान में यह नहीं किया गया है। पर मेरे विचार से सेठ जी की यह सम्मति कि हम इस समय सभा स्थगित कर दें और नई विधान-परिषद् द्वारा विधान-निर्माण के लिये एक वर्ष ठहरें, उचित नहीं है; क्योंकि नई परिषद् का नया चुनाव करना पड़ेगा और इस सभा को नई विधान-परिषद् के निर्वाचन के लिये कुछ नियम बनाने पड़ेंगे और इसमें कुछ समय लग जायेगा और फिर तो हमें इस समय नये विधान पर वाद-विवाद करने की अपेक्षा नई विधान-परिषद् के निर्वाचन के नियम बनाने के लिये बैठना होगा। मेरे विचार से वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित नई सभा को विधान में संशोधन करने का पूर्ण अधिकार होगा और यदि वह वाक्य-खण्ड, जिसके कारण विधान में संशोधन करना कठिन हो, निकाल दिया जाये तो इस संशोधन-प्रस्ताव के आशय की पूर्ति हो जाती है। अत: मैं निवेदन करता हूं कि जब वह भाग आयेगा, हम उस पर वाद-विवाद करेंगे; पर इस समय सभा स्थगित करना उपयुक्त नहीं होगा। इस कारण मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।

***श्री एस. नागप्पा:** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि मुझे अपने माननीय मित्र के इस प्रस्ताव का जो कि सभा के समक्ष है, विरोध करना पड़ा है। मेरे मित्र यह कह रहे थे कि उनको इस परिषद् में विधान बनाने के लिये नहीं भेजा गया है। मैं यह नहीं समझ सका कि किस आशय से उन्होंने यह चुनाव लड़ा। मेरे विचार से जब वे इस परिषद् में आये, तभी यह उनको स्पष्ट कर दिया गया था कि वे यहां केवल विधान-निर्माण के लिये आये हैं। किन्तु वह तो यह कहते हैं कि यह प्रतिनिधायी संस्था नहीं हैं क्या मैं उनसे पूछ सकता हूं कि फिर वास्तविक प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था किस प्रकार की होगी? क्या इन सदस्यों को जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों ने नहीं चुना? नि:संदेह मैं इस बात से सहमत हूं कि यह वयस्क मताधिकार के आधार पर नहीं हुआ। यह किसका दोष है? क्या यह वर्तमान सरकार का दोष है, अथवा पूर्व सरकार का? यह बात तो ठीक होती कि मेरे मित्र इस आपत्ति को पहली सरकार के सामने रखते। उनको यह भी मालूम है कि पहली सरकार के पास यथेष्ट समय नहीं था। उन्हें तो जाने की पड़ी थी। अत: यदि वे वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन-सूचियां

बनाते और चुनाव करते, तो उनको दो वर्ष लग जाते। मैं नहीं समझता कि मेरे मित्र दो साल तक और विदेशी राज्य चाहते थे। हमारा निर्वाचन जनता के प्रतिनिधियों द्वारा हुआ है और प्रत्येक सदस्य हजारों व्यक्तियों का प्रतिनिधि है। नि:संदेह वह जनता के प्रत्येक व्यक्ति का प्रतिनिधि नहीं है, पर वह शिक्षित वर्ग का प्रतिनिधि है और शिक्षित वर्ग ही जनता का प्रमुख अंग है। जब उन्होंने इन सदस्यों को यहां इस निश्चित कार्य के लिये भेजा है कि वे विधान बनायें और इसके साथ-साथ जब कि यही वह सभा है, जिसने विदेशियों से सत्ता ली है, तब तो यह अन्य किसी सभा से और भी अधिक नियमानुसार और प्रतिनिधायी सभा है। यदि वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचन हों भी, तो क्या मेरे मित्र इस बात का पूर्ण विश्वास दिला सकते हैं कि इन सदस्यों के अतिरिक्त अन्य सदस्य चुने जायेंगे? मुझे इसमें संदेह है। आज या कल से ही नहीं, वरन् अनेकों वर्षों से ये छटे-छटाये नेता हैं और जनता के विश्वासपात्र हैं। जब कि देश पर दुख और कष्ट था, उस समय भी जनता ने इनमें विश्वास किया था।

मेरे मित्र कह रहे थे कि गरीब जनता का कोई प्रतिनिधि नहीं है। हम कौन हैं? मैं निर्धन से निर्धन का प्रतिनिधि हूं। वे दलित वर्ग तथा पिछड़ी हुई जातियों का जिक्र करते थे। क्या हम दलित वर्ग के नहीं हैं? डॉ. अम्बेडकर क्या हैं? वे किसके प्रतिनिधि हैं? वे समाज की निम्नतम श्रेणी का प्रतिनिधान करते हैं और क्या उन लोगों में से डॉ. अम्बेडकर के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति प्रतिनिधि हो सकता है? यह हमारा सौभाग्य है कि विधान बनाने का कार्य समाज के निम्नतम श्रेणी के वास्तविक प्रतिनिधि को सौंपा गया है और मैं अपने मित्र का यह कथन नहीं समझ पाता कि गरीबों को और मज़दूरों को अवसर नहीं दिया गया है कि वे अपने प्रतिनिधि यहां भेजे। यदि यह सच है, तो क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि जब इस परिषद् का निर्वाचन हुआ, तो देश में इस बारे में कोई आवाज क्यों न उठी? इतनी संस्थायें और इतने समाचारपत्र थे, जो इसके विरुद्ध शिकायत तथा आंदोलन कर सकते थे; पर समस्त जनता इस बात की इच्छुक थी कि जितना जल्दी हो सके, इस सभा की स्थापना हो जाये और अंग्रेजों को, जिन्हें इस देश से जाने की पड़ी थी, छुटकारा दे दिया जाये। ऐसी दशा थी; अत: मुझे अपने मित्र की बातों पर आश्चर्य होता है। यदि मेरे मित्र इसे प्रतिनिधायी संस्था नहीं

[श्री एस. नागप्पा]

समझते हैं, तो उनको इस परिषद् में आना ही नहीं चाहिये था। पर ऐसा उन्होंने नहीं किया। इसके विपरीत उन्होंने यह बुद्धिमत्ता दिखाई कि वे इस सभा में आ गये, और यहां दो वर्ष रहे आये और इस सभा के सदस्य होने के गौरव का भोग करते रहे। यह सब तो कर लिया और अब जब कि विधान बन गया और स्वीकृति के लिये आया, तो आप उठे और कहने लगे कि यह सभा प्रतिनिधायी सभा नहीं है। मुझे इस बात में कोई युक्ति या तर्क दिखाई नहीं देता। देश के उस वर्ग को, जो कि असंतुष्ट है, या उस वर्ग को जो इस सभा में नहीं आ सका, या उस वर्ग को जिसे वर्तमान सरकार से ईर्ष्या है, छोड़ कर क्या वे यह सिद्ध कर सकते हैं कि इस देश में जनता की कोई ऐसी बड़ी संस्था है, जो कि इस सभा के प्रतिनिधायी रूप से संतुष्ट न हो?

मेरे मित्र मौलाना साहब ने भी यही कहा। मुझे नहीं मालूम है कि मौलाना साहब ने सेठ साहब से प्रेरणा प्राप्त की, या सेठ साहब ने मौलाना साहब से, अथवा दोनों ने साथ-साथ सलाह की। चाहे जो कुछ हो, केवल मुझे ही नहीं, बल्कि बहुत से लोगों को उनके विचार अनोखे लगते हैं। मैं नहीं कह सकता कि वे सभा को क्या बताने का प्रयत्न कर रहे थे, लेकिन ऐसा लगता है कि अपने विधान की अपेक्षा वे सोवियत विधान को अधिक चाहते हैं। यह भूलकर कि सोवियत विधान या और किसी विधान की अपेक्षा वे अच्छा विधान बना सकते हैं, उन्होंने हमारे सामने यह कहा कि वे सोवियत विधान अपनाने के पक्ष में हैं। इसका कारण तो मैं नहीं जानता कि इस विधान को अपनाने के लिये वे लालायित क्यों हैं यदि उनका तर्क यह है कि चूंकि हमने हर एक विधान से कुछ लिया है, इसलिये सोवियत विधान से भी कुछ लेना चाहिये, तो मैं मान सकता हूं कि उनकी बात में कुछ तथ्य है। लेकिन वे तो कहते हैं कि चूंकि हमने अमरीका, इंग्लैंड और न्यूजीलैंड के विधानों में से कुछ लिया है, हमें सोवियत विधान में से भी कुछ लेना चाहिये। वे ऐसा क्यों चाहते हैं। जो कुछ हमारे ग्रहण करने योग्य है, और जो हमारी परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार है, उसे हम दूसरे देशों से लेंगे। केवल लेने के विचार से ही हमने ऐसा नहीं किया है और हमारा विधान अन्य सब विधानों का मिश्रण नहीं है। हम अन्य विधानों का अध्ययन करते हैं और अपने रीति-रिवाजों और अपनी संस्कृति पर विचार करते हैं और

जो अधिकतम उपयुक्त होता है, उसे ग्रहण कर लेते हैं। अधिकतम उपयुक्त वस्तुओं को ग्रहण करने में कोई बुराई नहीं है।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव का विरोध करता हूं।

***रायबहादुर श्यामानन्दन सहाय** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मेरा प्रस्ताव है कि संशोधन पर बहस खत्म हो जाये और उस पर मत ले लिया जाये। मेरे माननीय मित्र सेठ दामोदरस्वरूप ने देश के एक राजनैतिक वर्ग की सम्मति प्रकट कर अपना कर्त्तव्य पूरा किया और इस पर हमें और अधिक समय नहीं लेना चाहिये। अब हमें विधान के मसौदे के सामान्य वाद-विवाद को आरंभ कर देना चाहिये।

***अध्यक्ष:** यह प्रस्ताव है:

''कि अब मत ले लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया

***अध्यक्ष:** यह प्रस्ताव है:

''कि मौलाना हसरत मोहानी का प्रस्ताव स्वीकार किया जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** यह प्रस्ताव है:

''कि सेठ दामोदरस्वरूप का प्रस्ताव स्वीकार किया जाये''।

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर अब सभा सामान्य वाद-विवाद आरंभ करेगी। श्री एच.वी. कामत का उस पर एक संशोधन है।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त तथा बरार : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव पेश करता हूं कि ''Constituent'' शब्द को निकाल दिया जाये और ''settled by the Drafting Committee'' शब्दों के स्थान में ''Prepared by the Drafting Committee'' शब्द रखें जाये।

यह केवल शब्द सम्बन्धी संशोधन है और इस पर वाद-विवाद की कोई आवश्यकता नहीं है। ''Constituent'' शब्द व्यर्थ है, क्योंकि ''Assembly'' से आशय

[श्री एच.वी. कामत]

''Constituent Assembly'' से ही है। प्रस्ताव के दूसरे भाग के सम्बन्ध में यह कि विधान के मसौदे की प्रति, जो हमारे पास है, उसमें ''Prepared by the Drafting Committee'' दिया है। मैं डॉ. अम्बेडकर के प्रस्ताव को इसी भाषा के अनुरूप लाना चाहता हूं; चाहे मुझे हठी अथवा भाषा की शुद्धता का ध्यान रखने वाला, ऐसी उपाधियों से विभूषित किया जाये।

***अध्यक्ष:** मैं नियम 38 (ए) की ओर ध्यान आकर्षित करूंगा, जिसमें ''Draft Constitution of India settled by the Drafting Committee'' शब्दों का प्रयोग है। डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव में इसी नियम से शब्द लिये गये हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय की आज्ञा से अब मैं मूल प्रस्ताव पर बोलूंगा। यद्यपि मैं प्रस्ताव को स्वीकार करता हूं, परन्तु डा. अम्बेडकर ने कल अपने पाण्डित्यपूर्ण भाषण में जो विचार रखे; उन सबको मैं नहीं मानता। मैं उनके उन विचारों से पूर्णतया सहमत हूं। इस प्रश्न के उन अंगों के सम्बन्ध में हैं, जो राज्य की शक्ति से सम्बन्धित हैं, जो सद्यस्कृत्यस्थिति में संघात्मक राज्य से एकात्मक राज्य में परिवर्तन करने वाले प्रावधान से सम्बन्धित हैं, तथा राज्य के विभिन्न अंगभूत इकाइयों को सम्पूर्ण संघ की सुरक्षा के विरोध में सेना रखने की अवांछनीयता के सम्बन्ध में है। मेरे विचार से उन्होंने यह कहने में गौरव समझा कि इस विधान में बहुत कुछ भारत-शासन-अधिनियम में से लिया गया है और यथेष्ट मात्रा में ब्रिटेन, अमरीका, आस्ट्रेलिया के विधानों और कदाचित् कनाडा के विधान में से भी लिया गया है। मैंने बड़े आनन्द से उनका भाषण सुना, पर लाभ कुछ भी नहीं हुआ। मैं उनसे यह आशा करता था कि वे हमें यह बताते कि हमारे राजनैतिक अतीत से भारतीय जनता की अपूर्व राजनैतिक तथा आध्यात्मिक प्रतिभा से क्या लिया गया है। इस बारे में सम्पूर्ण भाषण में एक भी शब्द नहीं था। हो सकता है कि यह सब आजकल की रीति हो। अभी उस दिन पैरिस में संयुक्त राष्ट्र की आम सभा में बोलते हुये श्रीमती विजय लक्ष्मी ने बड़े गौरव से यह विचार प्रकट किया कि हमने भारतवर्ष में स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व

का नारा फ्रांस से लिया, इंग्लैंड से यह लिया और अमरीका से वह लिया; पर उन्होंने यह नहीं कहा कि हमने अपने अतीत से—अपने राजनैतिक तथा ऐतिहासिक अतीत से—अपने दीर्घकालीन रंग-बिरंगे इतिहास से, जिसका हमें गौरव है, क्या लिया।

एक बात में मैं डॉ. अम्बेडकर का विरोध करता हूं। कार्यालय से प्रति न मिलने के कारण मैं समाचार पत्रों से उद्धृत करता हूं। उन्होंने गांवों का उल्लेख ''स्थानीयता की गंदी नालियां तथा अज्ञानता, विचार संकीर्णता और साम्प्रदायिकता की कन्दराओं'' के रूप में किया है और ग्रामीण जनता के लिए हमारे करुण विश्वास का श्रेय किसी मेटकाफ नाम के व्यक्ति को दिया है। श्रीमान् मैं यह कहूंगा कि यह श्रेय मेटकाफ को नहीं है, वरन् उससे कहीं महान व्यक्ति को है जिसने अभी हमें हाल ही में स्वतंत्र कराया है। गांवों के लिये जो प्रेम हमारे हृदय में लहरा रहा है, वह तो हमारे पथप्रदर्शक तथा राष्ट्रपिता के कारण पैदा हुआ था। उन्हीं के कारण ग्राम जनतंत्र में तथा अपनी देहाती जनता में हमारा विश्वास बढ़ा और हमने अपने सम्पूर्ण हृदय से उसका पोषण किया। यह महात्मा गांधी के कारण है, यह आपके कारण है और यह सरदार पटेल, पंडित नेहरू और नेताजी बोस के कारण है कि हम अपने देहाती भाइयों को प्यार करने लगे हैं। डा. अम्बेडकर के प्रति पूर्ण आदरभाव रखते हुए मैं इस सम्बन्ध में उनसे मतभेद रखता हूं। कल का उनका ढंग एक प्रतिभाशाली नगर निवासी के समान था और यदि ग्राम निवासियों की ओर हमारा यही रुख रहा, तो मैं केवल यही कह सकता हूं कि ''ईश्वर ही हमारी रक्षा करे''। यदि हम अपनी ग्रामीण तथा देहाती जनता के लिए सहानुभूति, प्रेम और अनुराग का भाव नहीं रखते हैं, तो मैं नहीं समझता कि हम किस प्रकार देश की उन्नति कर सकते हैं। महात्मा गांधी ने उस अन्तिम मंत्र द्वारा, जो उन्होंने जीवन के अंतिम दिनों में हमें दिया था, हमें यही सिखाया कि पंचायत राज्य के लिये हम प्रयत्न करें। यदि डा. अम्बेडकर यह बात स्वीकार नहीं करते हैं, तो मैं नहीं समझता कि हमारे ग्रामों को उन्नत बनाने के लिए उनके पास क्या उपचार या रामबाण औषधि है। अपने प्रांत, मध्यप्रांत और बरार में हमने अभी जनपदों की, स्थानीय स्वायत्त शासन तथा विकेन्द्रीयकरण की योजना प्रचलित की है और वह पूर्णत: हमारे पथ-प्रदर्शन की शिक्षाओं के अनुरूप है। मैं आशा करता हूं कि यह योजना फलीभूत होगी और देश के लिये उदाहरणस्वरूप होगी। श्रीमान्, हमारे गांवों के प्रति डा. अम्बेडकर के इस प्रकार के, यदि घृणापूर्ण नहीं तो अनिच्छापूर्ण

[श्री एच.वी. कामत]

भाषण को सुनकर मुझे बहुत दु:ख हुआ। कदाचित् मसौदा-समिति बनाने में ही गलती हुई। उसकी समिति में केवल एक श्री मुंशी के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा सदस्य नहीं था, जिसने अपने देश की स्वतंत्रता के संघर्ष में प्रमुख भाग लिया हो। उनमें से कोई भी हमारे संघर्ष में प्रेरणा प्रदान करने वाले उत्साह को समझने की क्षमता नहीं रखता। उनका हृदय इस बात को नहीं समझ सकता। वर्षों की यातनाओं और संघर्षों के पश्चात् जिस उथल-पुथल की दशा में हमारे राष्ट्र का जन्म हुआ, उसकी यथावत अनुभूति हृदय से उनमें से किसी को हो ही नहीं सकती। मैं बौद्धिक ज्ञान की बात नहीं कहता, क्योंकि वह तो अपेक्षाकृत कहीं सरल है। तभी तो डा. अम्बेडकर के कल के भाषण में हमारी दरिद्र से दरिद्र, निम्नतम और पिसी हुई जनता के प्रति उस प्रकार के तिरस्कार की भावना थी। मुझे खेद है कि उन्होंने मेटकाफ पर ही विश्वास किया। इस सम्बन्ध में अन्य इतिहास लेखकों तथा अनुसंधान करने वाले विद्वानों ने भी हमें अच्छी सूचनाएं दी हैं। मुझे नहीं मालूम कि उन्होंने डा. जायसवाल कृत ''इण्डियन पौलिटी'' नामक पुस्तक को पढ़ा है या नहीं। मैं नहीं जानता हूं कि उन्होंने एक और महानतर व्यक्ति श्री अरविंदकृत ''The Spirit and Form of Indian Polity'' नामक पुस्तक को पढ़ा है या नहीं। इन ग्राम्य समुदायों पर हमारी राज्य व्यवस्था सुदृढ़ रूप से ठहरी हुई थी। यही कारण है कि हमारी सभ्यता सब युगों में जीवित रही। यदि हम अपनी 'राज्य व्यवस्था' की शक्ति को भूल जायेंगे, तो हम सब कुछ भूल जायेंगे। हमारी 'राज्य व्यवस्था' क्या थी और उसमें कितनी शक्ति थी, इस विषय पर मैं एक संक्षिप्त उदाहरण सभा को पढ़कर सुनाऊंगा।

अपने परम विकास की हालत में और भारतीय सभ्यता के स्वर्ण युग में ऐसी प्रशंसनीय राज्य व्यवस्था की झलक हमें मिलती है, जिसमें कार्य चलाने की अपरिमित योग्यता थी और जिसमें ग्राम्य तथा नागरिक स्व-शासन के साथ-साथ शासन की स्थिरता तथा सुव्यवस्था भी पूर्ण मात्रा में वर्तमान थी। राज्य अपने प्रशासी, न्यायिक, वैत्तिक तथा रक्षात्मक कर्त्तव्यों की पूर्ति इस कौशल से करता था कि उसके किसी काम से भी उसकी जनता तथा उसी विभाग में कार्य करने वाली उसकी किसी संस्था के अधिकारों का तथा अवाध रूप से काम करने की सुविधाओं का न तो पूर्णतया अपहरण होता था और न आंशिक अपहरण। राजधानी तथा देश के अन्य न्यायालय न्याय के सर्वोच्च प्राधिकारी थे जो समस्त राज्य में न्याय-प्रशासन में सामंजस्य स्थापित करते थे।

इतना तो ग्राम जनतंत्र के सम्बन्ध में है। मेरा विश्वास है कि वह दिन अब दूर नहीं है, जब कि केवल भारत को ही नहीं, वरन् समस्त संसार को, यदि वह शांति, सुरक्षा, सुख तथा सम्पन्नता चाहता है, विकेन्द्रीकरण करना होगा और ग्राम जनतंत्र तथा नगर जनतंत्र स्थापित करने पड़ेंगे और इसी आधार पर उनको अपने राज्य का निर्माण करना पड़ेगा; अन्यथा संसार घोर विपत्ति के शिकंजे में फंस जायेगा।

श्रीमान्, डा. अम्बेडकर के भाषण में मेघों का घोर नाद था और थी उसमें चपला की चमक। किन्तु उसमें न थी, शक्ति प्रदायिनी, स्फूर्ति, संचारिणी, जीवनदायिनी, अमर ज्योति। भारत में अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में जो कुछ उन्होंने कहा वह मैंने सुना। मैं नहीं समझ सका कि किस आधार पर उन्होंने यह कहा कि किसी अल्पसंख्यक जाति ने वह पथ नहीं अपनाया, जो कि आयरलैंड के संघर्षमय स्वातंत्र्य आंदोलन में अल्पसंख्यक वर्ग ने अपनाया था और जिसका भास कार्सन के रेडमौंड को दिये गये उस उत्तर से मिलता है जिसका जिक्र डा. अम्बेडकर ने अपने भाषण में किया है और जिसमें उसने यह कहा था कि ''भाड़ में जाये तुम्हारे आश्वासन, हम तुम लोगों से शासित होना नहीं चाहते''। डा. अम्बेडकर ने इस उत्तर का जिक्र करने के पश्चात् कहा है कि किसी अल्पसंख्यक वर्ग ने भी भारत में इस प्रकार की हठ नहीं पकड़ी, वरन् इसके विपरीत यहां तो सब अल्पसंख्यक वर्गों ने यह मान लिया कि बहुसंख्यकों का राज्य हो और वह भी ऐसी हालत में, जब कि यहां बहुसंख्यक वर्ग अनिवार्य रूप से साम्प्रदायिक होगा, न कि राजनैतिक।

श्रीमान्, यदि हमारे अल्पसंख्यक वास्तव में इसी सिद्धांत पर दृढ़ रहते, तब तो भारत का और ही इतिहास होता। विगत दो वर्षों में जो कुछ हुआ, उसके पश्चात् भी क्या हम यह कह सकते हैं कि किसी अल्पसंख्यक वर्ग ने इस हठ को नहीं पकड़ा? गत 18 मास में जो दुखद घटनायें हुई, वे सब इसी कारण से तो हुई कि किसी विशेष अल्पसंख्यक वर्ग ने यह सिद्धांत अपनाया और कहा कि हम बहुसंख्यकों के शासन में नहीं रहना चाहते और जो इस सिद्धांत के विरोधी है, वे जहन्नुम रसीद हों। यदि डा. अम्बेडकर का उल्लेख 15 अगस्त सन् 1947 ई. के बाद के भारत से है तब तो मुझे कुछ कहना ही नहीं है, पर यदि वे

[श्री एच.वी. कामत]

15 अगस्त सन् 1947 ई. से पूर्व के भारत का उल्लेख करते हैं, तब तो मैं उनके कथन में कोई तथ्य नहीं पाता। वे यह कैसे कह सकते हैं कि ऐसा कोई अल्पसंख्यक वर्ग न था, जिसने यह कहा हो कि हम संरक्षण नहीं चाहते, और न चाहते हैं आपसे शासित होना। अन्ततः पाकिस्तान बना और हमें गत अठारह मास की दुखद घटनायें देखनी पड़ी। यह सब तो इसी कारण से हुआ कि एक विशेष संस्था ने यह रट लगाई : ''हमें संरक्षण नहीं चाहिये, हम तो अपना राज्य अलग बनाना चाहते हैं।''

सन् 1927 ई. में जब कि मैं विद्यार्थी था, कांग्रेस के मद्रास-अधिवेशन में गया। मौलाना मुहम्मदअली और पंडित मालवीय दोनों उस अधिवेशन में उपस्थित थे। संरक्षणों का प्रश्न था और पं. मालवीय ने इतना ओजस्वी भाषण दिया कि जिसका मन पर बड़ा भारी प्रभाव हुआ। उन्होंने कहा—''आपने भारत के राजमंत्री अथवा भारत सरकार से क्या संरक्षण मांगे? हम यहां उपस्थित हैं। आप इससे अधिक क्या संरक्षण चाहते हैं?'' इस भाषण के पश्चात् मौलाना मुहम्मदअली मंच पर आये, पंडित मालवीय को गले से लगाया और कहा: ''मैं कोई संरक्षण नहीं चाहता। मैं एक भारतीय के समान भारतीय राज्य के अंग-स्वरूप रहना चाहता हूं। हम अंग्रेजी सरकार से कोई संरक्षण नहीं चाहते हैं। पंडित मालवीय हमारे लिये पर्याप्त संरक्षण हैं।'' यदि यही भावना हममें बनी रहती, तो हम अखंड भारत, एक देश, एक राज्य और एक राष्ट्र के रूप में रहते। इसी कारण मैं नहीं समझ सकता कि डा. अम्बेडकर किस आधार पर यह कहते हैं कि भारत के किसी अल्पसंख्यक वर्ग ने इस हठ को नहीं पकड़ा। बहुसंख्यक सदैव उन्हें संरक्षण, पर्याप्त संरक्षण देने के लिये प्रस्तुत थे। पर अल्पसंख्यक तो संरक्षणों को स्वीकार करना चाहते ही न थे। भारत में अल्पसंख्यकों ने वही हठ पकड़ी जो आयरलैंड में कार्सन ने पकड़ी थी। इसी कारण आयरलैंड के राज्य के लिये हानिकारक आयरलैंड का विभाजन उसी प्रकार हुआ जैसा कि भारत में हुआ है और जिसके फलस्वरूप देश की शांति भंग हुई और उन्नति में बाधा पड़ी।

श्रीमान्, विधान के एक या दो अन्य अंगों के सम्बन्ध में भी कुछ कहना चाहता हूं। एक बात का सम्बन्ध तो 280 अनुच्छेद से है, अर्थात् उस अनुच्छेद से जो मौलिक अधिकारों के बारे में है।

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य अपना समय लगभग समाप्त कर चुके हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं एक या दो मिनट और चाहता हूं। सद्यस्कृत्यस्थिति की अवस्था में मौलिक अधिकार स्थगित किये जा सकते हैं जिसका यह आशय है कि हाई कोर्ट के अधिकार छीने जा सकते हैं। विधान में ऐसा प्रावधान रखना संकटास्पद है। यदि मैं भूल नहीं करता तो मैं कह सकता हूं कि गत महायुद्ध में भी अंग्रेजी सरकार ने बन्द्युपस्थापन लेख के लिए समुपयुक्त न्यायालयों में कार्यवाही करने के नागरिक के अधिकार को अस्थायी रूप से छीन नहीं लिया था। मेरी समझ में यह बात उचित नहीं कि अंग्रेजी सरकार की अपेक्षा में हम अच्छी बात करने के स्थान में बुरी बात करें। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 108 में दिया हुआ अध्यादेश बनाने का अधिकार है। इसको हटा देना चाहिये। जब हम अंग्रेजी सरकार से संघर्ष कर रहे थे, उस समय गवर्नर-जनरल तथा वाइसराय के अध्यादेश बनाने के अधिकार का हम विरोध करते थे। यहां हम इस प्रावधान को सद्यस्कृत्यस्थिति के लिये नहीं रख रहे हैं। अनुच्छेद 102 में केवल यह दिया हुआ है कि यदि अध्यक्ष को आवश्यक प्रतीत हो तो वह अध्यादेश का प्रवर्तन कर सकता है, यदि हम इस अधिकार को वस्तुतः निकाल न सकें तो हमें इसे बहुत कुछ संकुचित कर देना चाहिये।

अब मैं यह कह कर समाप्त करूंगा कि तमाम अच्छाइयों के और भारत को एक संयुक्त और शक्तिशाली संघात्मक और एक सत्तात्मक राज्य बनाने के समस्त प्रावधानों के होते हुए भी कुछ ऐसे विषय हैं जिनका समावेश इसमें अधिक सुन्दर ढंग से किया जा सकता था।

[श्री एच.वी. कामत]

राज्य किस लिये है? राज्य की उपयोगिता का अनुमान इस बात से किया जाता है कि साधारण मनुष्यों के हितों पर उसका क्या प्रभाव पड़ता हैं तत्वत: जिस विवाद का निर्णय हमें करना है वह यह है कि व्यक्ति राज्य के लिये है, अथवा राज्य व्यक्ति के लिये। अपने जीवन काल में यह प्रयत्न किया कि इन दोनों के बीच का पथ निकाला जाये और इस द्वंद को सुलझाया जाये और इस प्रयत्न के कारण वे पंचायत राज्य के सिद्धांत पर पहुंचे। मुझे आशा है कि हम भारत में और आगे कदम रखेंगे और यह प्रयत्न करेंगे कि राज्य का अस्तित्व व्यक्ति के लिये हो, न कि व्यक्ति का अस्तित्व राज्य के लिये। यह ध्येय है जो हमें अपनाना चाहिये और ऐसी व्यवस्था को ही हमें अपने देश में स्थापित करना चाहिये। हमारे पूर्वजों की अपूर्व आध्यात्मिक तथा राजनैतिक देन हमें प्राप्त हुई है। अत: हम भारत के लोग अपने देश में इस आदर्श को फलीभूत करने के सर्वथा समर्थ हैं और आज मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि जब तक महात्मा गांधी द्वारा और उनसे पूर्व हुए अन्य ऋषियों द्वारा बताये हुये ढंग साम्राज्य-धर्म के स्थान पर धर्म-साम्राज्य की स्थापना नहीं होती, जब तक यह आदर्श संसार में पूर्णतया फलीभूत नहीं होता, तब तक इस पृथ्वी पर शांति स्थापित नहीं होगी। कम से कम हमें तो अपनी राजनैतिक संस्थाओं में इस धर्म-साम्राज्य को स्थापित कर देना चाहिये। यदि हमने ऐसा न किया तो इस सभा के प्रयत्नों का जो कुछ भी फल होगा उससे भारतीय जनता की राजनैतिक अलौकिक बुद्धि की लेशमात्र भी गंध न आयेगी। पाश्चात्य चमक-दमक का हमारे मन पर बड़ा प्रभाव है। सच तो यह है कि चमक-दमक का प्रभाव हमारे नस-नस में घुस गया है और हम अपनी कार्यरीतियों के तथा विचार प्रणालियों के सर्वथा बन्दी हो गये हैं ये सब हमारे लिये सिन्दबाद नाविक के उस वृद्ध पुरुष के समान हो गये हैं जिन्हें कि हम उठा कर दूर नहीं फेंक सकते। आज हम अपनी पुरानी आदतों को छोड़ने में असमर्थ हैं। किंतु इन सब विमुह्यताओं के घने कुहरे के बीच में एक नई मधुरिम ज्योति हमें भरोसा दे रही है; वह संध्या की मधुरिम ज्योति नहीं वरन् है प्रभात की मधुरिम ज्योति। यह युग संधि वाला, भारत अभी मरा नहीं है और न इसने अपनी अंतिम रचनात्मक

शब्दों को कह कर ही समाप्त किया है; वह अभी जीवित है और अभी भी उसे अपने लिये तथा मानव परिवार के लिये कुछ करना है। और आज जो भी भारत में चेतन है वह, मेरी आशा ऐसी है, आंग्ल संस्कार अथवा यूरोपीय संस्कार धारण करने वाला वर्ग नहीं है, जो पाश्चात्य सभ्यता का अंध-भक्त है और जिसके भाग्य में पश्चिम की आकस्मिक सफलताओं अथवा विफलताओं के चक्र में फंस कर चक्कर काटना है, वरन् वह अब भी है वही प्राचीन अजेय शक्ति जो ज्योति और शक्ति के उच्चतम स्तम्भ की ओर अपना मुख करके तथा अपने धर्म के पूरे तत्त्व तथा व्यापक स्वरूप को पहचानने में प्रयत्नशील हो कर अपनी आत्मा के मूल स्वरूप को पुनः प्राप्त कर रही है। इस विश्वास में और इस धारणा से सशक्त हम भविष्य में आगे बढ़ें और ईश्वर की कृपा से विजय-श्री हमारे प्रयत्नों को शोभित करेगी।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, इस महान् विषय के लिये मेरे पास थोड़ा समय है, इस कारण में एक या दो विषयों को ही लूंगा और अन्य विषयों पर अपने विचारों को बाद में रखूंगा। सर्वप्रथम मैं सभा का ध्यान ''राज्य'' (States) शब्द के प्रयोग की और आकर्षित करूंगा। विधान के मसौदे में ''राज्य'' शब्द से कोई भी वस्तु अभिप्रेत हो सकती है। विचार यह था कि वर्तमान प्रांतों, देशी रियासतों और चीफ-कमिश्नर के प्रांतों तथा अन्य ऐसे ही नामों में भेद-विभेद को मिटा दिया जाये। एक समय इस बात का भय था और ऐसा भय स्वाभाविक ही था कि कहीं राजनैतिक व्यवस्था में भी देशी राज्य स्वयं न अपनायेंगे या अपनाने के लिये विवश न किये जा सकेंगे। किन्तु इस दिशा में प्रगति बहुत तेजी से हुई है और देशी राज्य या तो अपनी इच्छा से अथवा बाध्यता से उस राजनैतिक व्यवस्था को अपना चुके हैं या अपनाते जा रहे हैं जो कि प्रांतों में इस समय वर्तमान हैं। अतः मेरी समझ में ''राज्यों'' की

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

ऐसी व्यापक परिभाषा ठीक नहीं है जिससे कि इस शब्द से विभिन्न वस्तुओं का बोध हो। मेरे विचार से हमें प्रांतों, देशी राज्यों, चीफ-कमिशनर के प्रांतों तथा अन्य प्राचीन नामों को ही ग्रहण कर लेना चाहिये। इनके बारे में यह भय नहीं हो सकता कि इनमें से एक दूसरे के अर्थ का द्योतक हो जायेगा और भिन्न-भिन्न वस्तुओं के लिये इन भिन्न नामों का प्रयोग ही श्रेयस्कर होगा। हो सकता है कि सुयोग्य प्रारूपकारों ने यह सोचा है कि यदि उपर्युक्त प्रयोग न किया गया तो ऐसी विकेन्द्रीकरण करने वाली शक्तियां सक्रिय हो जायेंगी जो कि इन राजनैतिक इकाइयों को एक दूसरे में दूर कर देंगी। मसौदा बनाने वाले महान व्यक्तियों ने कदाचित् यह सोचा होगा कि केन्द्र से परे कोई ऐसी शक्ति क्रियान्वित होगी जो उनको पृथक कर देगी। पर चूंकि वह भय अब दूर हो गया, अत: मूल स्थिति को ग्रहण कर लेना अब आवश्यक है। मैं निवेदन करता हूं कि हम भविष्य के लिये विधान नहीं बना रहे हैं; हम तो वर्तमान के लिये विधान बना रहे हैं। यद्यपि हमें भविष्य को दृष्टि में रखना चाहिये, पर साथ ही हमें इस बात को नहीं भूल जाना चाहिये कि हम वर्तमान के लिये विधान बना रहे हैं विधान के मसौदे में तीन स्पष्ट चीजें हैं, उदाहरणार्थ, प्रान्त, देशी रियासतें तथा चीफ-कमिश्नर के प्रान्त। इनके वर्तमान अन्तर को हमें मिटाना नहीं चाहिये। यदि कभी भविष्य में ये विशिष्ट सत्तायें एक रूप हो जायें, और मुझे किंचित संदेह नहीं है कि वह ऐसा रूप धारण करेंगी और उनमें पूर्णतया अथवा लगभग एक से गुण हों, तो उस समय यह उचित होगा कि संविधान का संशोधन किया जाये और उनके लिये एक सी व्यवस्था की जाये।

आपको यह जानकर खुशी होगी कि छठे तथा बारहवें भाग में ''राज्य'' का अर्थ प्रांतों से है। सातवें भाग में ''राज्य'' का अर्थ चीफ-कमिश्नर के प्रांतों से है। चौथे भाग में ''राज्य'' का अर्थ देशी रियासतों से है। तीसरे भाग में ''राज्य'' का अर्थ वस्तुओं के एक आश्चर्यजनक क्रम से है। सातवें अनुच्छेद के अनुसार सर्वप्रथम ''राज्य'' का अर्थ भारत सरकार है, दूसरा अर्थ राज्यों की सरकार है

जिसका आशय रियासतों, प्रांतों तथा चीफ-कमिश्नर के प्रांतों सबसे है और बड़ी अद्‌भुत बात तो यह है कि उसका अर्थ स्थानीय अथवा अन्य प्राधिकारियों से भी है। मेरे ख्याल से अन्य प्राधिकारी से बोध म्यूनिसिपल, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा अन्य स्वायत्त प्राधिकारियों से है। मेरा विचार है कि वैधानिक पद के प्रयोग का इतना आग्रह उचित नहीं है। जिला बोर्ड या नगर बोर्ड या इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं को राज्य कहना भाषा की हत्या करना है। यदि विधान के कलेवर की भाषा अंग्रेजी ही रखनी है तब तो राज्य शब्द के प्रचलित अर्थ को कुछ न कुछ मान्यता देनी ही होगी। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सर्वदा ही राज्य शब्द से प्रभुता-सम्पन्न संस्था ही अभिप्रेत होती है। यह प्रभुता सीमित हो अथवा असीमित, पर राज्य शब्द में किसी न किसी प्रकार की प्रभुता अवश्य अभिप्रेत होती है। लेकिन जैसा कि मैंने निवेदन किया है डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अथवा म्यूनिसिपलटी को राज्य कहना भ्रमात्मक है। मेरे विचार से राज्य शब्द के प्रयोग की उत्कण्ठा को संयमित करना चाहिये। यदि नाम का प्रश्न है, यदि हम भारत सरकार और देशी रियासतों के लिये एक ही शब्द का प्रयोग करना चाहते हैं तो कम से कम हमें म्यूनिसिपलटी या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड शब्द का स्पष्ट प्रयोग करना चाहिये और राज्य शब्द के व्यापक अर्थ के अंतर्गत इनको नहीं समझना चाहिये। यदि हम राज्य शब्द का प्रयोग अनेक प्रकार के अर्थों में होने देंगे तो इस प्रसिद्ध वैधानिक शब्द के प्रयोग करने का वास्तविक आशय ही लुप्त हो जायेगा।

अत: मेरा ऐसा विचार है कि संशोधनों का मसौदा बनाते समय माननीय सदस्य इस बात का ध्यान रखेंगे। मुझे इस प्रकार का प्रयोग ठीक नहीं लगा है और इस शब्द के लिये अन्य समानार्थी शब्द मिलना कठिन है। इस आशय का किसी उपयुक्त शब्द के खोजने के लिये मैं माननीय सदस्यों का सहयोग चाहता हूं। भिन्न-भिन्न वाक्य खंडों में इस शब्द की व्याख्या भिन्न-भिन्न अर्थों में की गई है। अनुच्छेद 7, 28, 128, 212 और 247 के अनुसार राज्य शब्द का भिन्न-भिन्न प्रकार के अर्थों में प्रयोग करना संकट से खाली नहीं होता। इससे गड़बड़ी हो सकती है। हर एक व्यक्ति के लिये, जिसका इस विधान की व्याख्या से अथवा उसके समझने से सम्बन्ध हो, अपने मस्तिष्क में इस बात को स्पष्ट रखना कठिन होगा कि किसी विशेष स्थान में इस शब्द का किस अर्थ में प्रयोग किया गया

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

है। श्रीमान्, मेरे विचार से इस प्रकार के मसौदा बनाने का मुख्य आशय विभिन्न प्रकार की इन समस्त संस्थाओं का अन्ततः एकीकरण करना और उनको समान रूप देना ही रहा होगा। पर अब राज्य शब्द के इस प्रकार के अस्पष्ट प्रयोग की आवश्यकता नहीं है। अतः मैं माननीय सदस्यों से निवेदन करूंगा कि संशोधनों की सूचना देते समय इस बात का ध्यान रखें कि प्राचीन प्रसिद्ध शब्द, प्रांत, देशी रियासतें और चीफ-कमिश्नर के प्रांतों का ही प्रयोग करना उपयुक्त होगा।

एक अन्य विषय के सम्बन्ध में मुझे एक-दो बातें और कहनी हैं। अनुच्छेद 28 से लेकर अनुच्छेद 80 तक में दिये हुये राज्य के लिये निर्देशक सिद्धांतों पर जब मैं दृष्टिपात करता हूं तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि ये केवल पवित्र भावनायें मात्र है और ये अनिवार्य रूप से मान्य न होंगे। इनको किसी न्यायालय में की गई कार्यवाही द्वारा मनवाया न जा सकेगा, और जैसा कि माननीय विधि मंत्री ने कहा है वास्तव में ये केवल पवित्र किन्तु अर्थ-हीन भावनायें हैं। उनके बारे में मेरी यही आलोचना है। उन्होंने केवल यही उत्तर दिया कि विधान का मसौदा इनको इसी रूप में मानता है। मेरा निवेदन है कि यह उत्तर नहीं है, यह तो आलोचना की सत्यता का विवरण है। मेरे विचार से प्रत्येक वैधानिक सिद्धांत को अधिकार का रूप देना चाहिये। यदि कोई अधिकार है तो उसका हनन भयकृत्य माना जाता है और इससे सर्वज्ञात वाद-कारण उत्पन्न होता है। अतः ऐसा कोई अधिकार हो ही नहीं सकता जिसके हनन होने से कोई वाद-कारण पैदा न होता हो। मेरे विचार से इन बातों के लिये लोग न्यायालय की शरण नहीं लेंगे। परन्तु यदि भारतीय विधान जैसे यथेष्ठ महत्त्वपूर्ण आलेख में किसी वैधानिक अधिकार की पर्याप्त दिखावट के साथ व्याख्या की गई हो और यदि उस अधिकार के भंग होने पर किसी कानूनी उपचार की व्यवस्था नहीं की गई हो तो विधान में इस प्रकार के तथाकथित अधिकारों को रखना पूर्णतया अनुचित होगा। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि इन सिद्धांतों को लोग इतनी भली भांति जानते हैं कि यह आवश्यक नहीं है कि इनका विवरण विधान में दिया जाये और विशेषतया तब तो होना ही न चाहिये, जब कि साथ ही साथ यह भी कहा जाता हो कि ये न्याय नहीं हैं मेरा निवेदन है कि यदि ये सिद्धांत जो पूर्णतः निर्देशक है और जिनके पीछे कोई शक्ति नहीं है, जो इन्हें लागू कर सके, विधान में रखे जाते हैं, तो मेरे विचार से और भी ऐसे सिद्धांत हैं, जिनको भी संविधान में रखना

चाहिये; उदाहरणार्थ, झूठ मत बोलो, अपने पड़ोसी से बुरा व्यवहार मत करो, इत्यादि, इत्यादि। इसी सिद्धांत के अनुसार बाइबिल के दस उपदेशों के तथा विभिन्न धर्मों और व्यावहारिक जीवन के नियमों का समावेश भी संविधान में होना चाहिये। चूंकि इन समस्त प्रत्यक्ष सत्य बातों का रखना हमने व्यवहार्य नहीं समझा—इस कारण नहीं कि ये सत्य बातें ग्राह्य नहीं है अथवा अनिवार्य नहीं है, पर इस कारण कि वे प्रत्यक्ष हैं—मैं निवेदन करता हूं कि ये निदेशक सिद्धांत भी इतने प्रत्यक्ष हैं कि इनके विवरण की आवश्यकता नहीं है। यदि किसी सिद्धांत का विवरण आवश्यक है तो वह न्याय होना चाहिये, उसका न्यायालय द्वारा प्रवर्त्तन होना चाहिये। यदि ऐसा नहीं है तो विधान में उसे स्थान नहीं मिलना चाहिये। माननीय विधि-मंत्री ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि इस प्रकार के सिद्धांत सिवाय आयरलैंड के विधान के अन्य विधानों में नहीं पाये जाते हैं। यदि इस प्रकार का विस्तृत सिद्धांत केवल एक विधान में पाया जाता है और वह विधान सर्वोत्तम विधान नहीं है, तो फिर मेरे विचार से वह ऐसा नहीं है कि जिसका अनुकरण बिना किसी खतरे के किया जा सके। मेरा निवेदन है कि जब इन निदेशक सिद्धांतों पर विचारारम्भ हो, तो इन पर माननीय सदस्य को बड़े विचारपूर्वक इन पर ध्यान देना चाहिये, क्योंकि इन सिद्धांतों पर सावधानीपूर्वक ध्यान देने की आवश्यकता है।

क्योंकि समय बहुत कम है, मैं सभा का और समय नहीं लेना चाहता हूं, पर मैं अपने अन्य विचारों को उपयुक्त समय में, जब उनकी आवश्यकता होगी, प्रकट करूंगा।

सरदार भूपेन्द्रसिंह मानः साहिबे सदर, एक ऐसे मुल्क के लिए कि जो गुलामी के तारीखी दौरे से गुजरा हो, आइन बनाते वक्त कुछ रोशन नजरिया रखना कुदरती बात है। ऊंचे निशानों को सामने न रखा जावे, तो तरक्की रुक सकती है। तरक्की के लिए यह लाजिमी चीज है। लोगों में इख्तलाफ़ात पैदा हुआ करते हैं। उस वक्त यह देखना पड़ता है कि हम किस रफ्तार से चलें, जिससे कि हम अपने मंजिले मकसूद पर पहुंच सकें। राजनैतिक कामों में किसी हकीकत को नजर अन्दाज करना और वक्त के तकाजे से पहले कोई कदम उठाना, वह चाहे कितना ही तरक्की याफ्ता क्यों न हो, वह गलत साबित होता है। मैं ड्राफ्टिंग कमेटी को मुबारकबाद देता हूं कि इसने हालात का तरीका ठीक तरह से इख्त्यार किया और चन्द अहम सवालों का वक्त के मुताबिक हल किया है। नुक्ताचीनी इस पर दो

[सरदार भूपेन्द्रसिंह मान]

पहलू पर हो रही है। एक मजबूत मरकज़ और उसके बचे-खुचे इख्त्यारात का उसके पास होना बाज़ लोगों के नुक्ताचीनी का बाइस बन गया है। इसमें कोई शक नहीं है कि कांग्रेस की पोजीशन भी ऐसी ही रही है। मगर बदले हुए हालात में और पुराने तकसीम के तजुरबे से बाज़ लोगों का यह तकाजा है कि मरकज मज़बूत हो। रूस की मिसाल हमें इसके खिलाफ दी जाती है लेकिन वह लोग बहुत जानते हैं कि रूस के 30 साल की डिक्टेटरी के बाद अपने सूबों को इखत्यारात दिए हैं। मुल्क ज्यों-ज्यों तरक्की करेगा, इक्तसादी तरक्की करेगा। तो मैं समझता हूं कि यहां के मुख्तलिफ़ सूबों को भी यह आज़ादी बदस्तूर थोड़ी-थोड़ी करके दी जा सकती है। लेकिन जहां से इस उसूल को मानता हूं वहां मरकज़ से सूबों के दिए गए रोज़मर्रा के कामों के इखत्यारात में इसका दखल देना मैं समझता हूं, गैर मुनासिब है। इसकी मिसाल क्लाज 226 है। मुख्तलिफ़ सूबों की असेम्बलियों में इसके ऊपर बहस हुई और वहां पर उन्होंने इसको नापसन्द किया है।

दूसरा सवाल अक्लियतों का मसला है। इस पर गौर करते हुए अक्सीरियत के मेम्बर मुतास्सिर हो जाते हैं। उन पर पिछले वाक़यात का असर पड़ता है। लेकिन आप इनको ज़रा गौर से देखें। पहले यहां हमारे मुल्क में एक तीसरी ताक़त मौजूद थी जो हमेशा अक्लियतों को गैरमाकूल होने की तजबीज़ दिया करती थी। चुनाचे मुझे अफ़सोस है कि हममें से एक अहम अक्लियत ने इस दावत को कबूल किया और गैरमाकूल रवैया इख्त्यार किया और मुल्क को तकसीम करा दिया। लेकिन, साहिबे सदर, दूसरी अक्लियतों के मुताल्लिक तो यह बात नहीं कहीं जा सकती। जिस अक्लियत का मैं मेम्बर हूं उसने मुल्क की हर आवाज़ को अपने कानों से सुना है और मुल्क की हर आज़ादी की लड़ाई में बावजूद इस बात के कि उसकी गिनती बहुत थोड़ी थी, उसने बहुत बढ़ कर हिस्सा लिया है।

चुनाचे जब मैं आपकी तवज्जह अपनी तरफ बतौर अक्लियत के दिलाना चाहता हूं तो मेरा यह हर्गिज मकसद फिकेंवाराना बातों को बढ़ाना या पैदा करना नहीं है और न मुल्क और कौम को ही कमजोर करने का है। बल्कि मैं एक अहले वतन परस्त की हैसियत से यह बात कह रहा हूं, जो यह महसूस करता है कि

अक्लियतों की खुश असलूबी हासिल करने से मुल्क की शान बढ़ती है और कौम की ताकत बढ़ती है। अब तीसरी ताकत मौजूद नहीं हैं अक्लियतों के गैरमाकुल रवैये का दौरदौरा खत्म हो चुका है और अब उसके बाद अक्सीरियत की जिम्मेदारी में इजाफ़ा हो गया है। अक्सीरियत को अक्लियत का ऐतमाद हासिल करना है। मैं उम्मीद करता हूं कि ताकत के साथ-साथ अक्सीरियत अपनी अक्लियतों के शक व शुबा को दूर कर सकेगी और उसको अक्लियत का ऐतमाद हासिल करना ही होगा। साहब, आप इस बात को तो मान चुके हैं; मज़हब और जुबान के तौर पर आप इन चीज़ों को एक-एक दफ़ा में मान चुके हैं।

साहिब सदर, जहां मैं यह कहता हूं कि आइन-मसौदे में बिल्कुल वक्त के मुताबिक हल किया है वहां पर मैं अपने फर्ज़ से कोताही करूंगा अगर मैं आपके ख्याल में न लाऊं कि जहां बुनियादी हकूक और खसूसन शहरी आज़ादी का ताल्लुक है, क्लाज 13 में इतनी कड़ी शर्तें रखी गई है कि तमाम हकूक को नाकारा बना दिया गया है। जहां तक कि साइंस का ताल्लुक है, ईस्ट पंजाब और वैस्ट बंगाल में जिन पर कि तकसीम का बहुत बड़ा असर पड़ा है, इन सूबों का खास ख्याल रखना चाहिये।

इसके साथ ही सिटिज़नशिप की जो क्लाज़ है, मैं समझता हूं कि वह शर्तें शरणार्थियों के लिए और ढीली होनी चाहिए। डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के सामने जाकर बयान देना कि मैं हिन्दुस्तान की शहरियत इखत्यार करना चाहता हूं, लाखों शरणार्थियों के लिए मुश्किल होगा कि वह इस बयान के लिये दूरदराज़ जगहों से आवे और बाज़-बाज़ सूरतों में तो यह हो सकता है कि चालीस-चालीस और पचास-पचास मील से लोगों को आना पड़ेगा और कितना ही रुपया उनका सफ़र में खर्च हो जायेगा। इसलिए खासकर पंजाब में जहां पर कि लोगों की रिहाइश का कोई बन्दोबस्त नहीं है, उनको इस तरह पर मजबूर करना मुनासिब नहीं है।

एक आखिरी चीज़ और है। मैं कल से यह देख रहा हूं कि जुबान के मसले को जज़बाती रंग में हल करने की कोशिश की जा रही है। मैं समझता हूं कि जुबान के मसले को हल करते वक्त उसको जजबाती रंग नहीं देना चाहिए। बाज़ वक्त तो यह मज़हबी रंग अखत्यार कर लेता है। मेरी समझ में जुबान के मसले को

[सरदार भूपेन्द्रसिंह मान]

हल करते वक्त कांग्रेस के रवैये को बरकरार रखना चाहिये और इससे पहले जो मुतद्दद रेज्युलुशन कांग्रेस ने हिन्दी जुबान के मुताल्लिक पास किए हैं, उनको बरकरार रखना चाहिए।

***श्री फ्रेंक एन्थॉनी** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, यद्यपि डा. अम्बेडकर सभा में उपस्थित नहीं हैं फिर भी वकील होने के नाते मुझे उनको हमारे विधान के मसौदे में निहित सिद्धांतों के प्रमाण युक्त तथा स्पष्ट विश्लेषण के लिये बधाई देनी चाहिये। विधान के मसौदे पर चाहे हमारे कितने ही विभिन्न विचार हों, परन्तु यदि अन्य दृष्टि से नहीं तो कम से कम स्थूल दृष्टि से तो यह स्वीकार कर लिया जायेगा कि यह एक वृहद् आलेख है। और मेरे विचार से यह हमारा लड़कपन होगा यदि हम मसौदा-समिति के सदस्यों को विशेष रूप में धन्यवाद का एक शब्द भी न कहें, क्योंकि मुझे यह विश्वास है कि इतने वृहद् आलेख को तैयार करने में उनको बहुत अधिक शारीरिक तथा मानसिक परिश्रम करना पड़ा होगा।

डा. अम्बेडकर ने इस बात का हवाला दिया कि संघात्मक विधान में अपरिवर्तनशीलता तथा अतिविधिता किसी सीमा तक आवश्यक होती है। पर स्थानीय आवश्यकताओं और स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप इस विधान में अधिकतम लचीलापन देने का प्रयत्न किया गया है। उन्होंने यह भी बताया कि इस लचीलेपन को इस सीमा तक नहीं ले जाया गया है कि उससे अराजकता फैले। उदाहरण के रूप में समान कानूनों, केवल एक न्यायाधीश वर्ग और एक केन्द्रीय प्रशासन सेवा द्वारा मौलिक विषयों में आवश्यक एकता तथा पूर्णता स्थापित की गई है। डा. अम्बेडकर ने यह भी बताया है कि केन्द्र को अतिशय शक्तिशाली बनाने वाले सिद्धांत तथा केन्द्र को न्यूनतम शक्तिशाली बनाने वाले सिद्धांत, इन दोनों सिद्धांतों के बीच के सिद्धांत पर यह विधान आधृत है। उन्होंने यह महसूस किया कि यह कल्याणकर सिद्धांत है कि केन्द्र को अतिशय शक्ति देकर इतना भारी नहीं बनाना चाहिये कि वह उसी के नीचे दब जाये। श्रीमान्, मैं जानता हूं कि इस सभा में अनेकों सदस्य मुझसे सहमत नहीं होंगे, पर मैं भी इसे कल्याणकर सिद्धांत समझता हूं कि यह आवश्यक बात है कि केन्द्र को अतिशय शक्ति न दी जाये। वैधानिक

दृष्टि से तो यह अपवाद रहित सिद्धांत है, परन्तु उसके व्यवहार में हमें स्थानीय आवश्यकताओं और परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ही उसे ग्रहण करना चाहिये। और यदि हम सच्चाई से दूर नहीं भागना चाहते, तो हमें यह मान लेना चाहिये कि इस विस्तृत देश में विभिन्नतायें होने की तथा इसके ऐक्यनाशन की निहित सम्भाव्यताएं हैं। अत: देश के हित के लिये तथा राष्ट्र के ऐक्य तथा उसकी आन्तरिक संश्लेषण की दृष्टि से यह आवश्यक है कि जितनी अधिक से अधिक शक्ति केन्द्र को दी जा सकती हो, वह उसे दी जाये। मैं महसूस करता हूं कि तीन विशेष विषयों में केन्द्र का नियंत्रण होना चाहिये। मैं नही जानता हूं कि मेरे कुछ मित्र यहां मुझसे किस सीमा तक सहमत होंगे।

मेरी समझ से पहला विषय जिस पर केन्द्र द्वारा नियंत्रण होना चाहिये, पुलिस व्यवस्था है। मेरी समझ से समस्त देश में पुलिस की नौकरियां केन्द्र से नियंत्रित होनी चाहिये। आप पूर्ण नियंत्रण न रखें। आप उसमें कुछ कमी कर दें, पर केन्द्र से कुछ नियंत्रण होना चाहिये। हमें स्मरण है कि भारतीय पुलिस सेवा नाम का एक विभाग था। वह अखिल भारतीय सेवा विभाग था और उसके सदस्य विभिन्न प्रांतों के पुलिस विभागों में मुख्य पदों पर रखे जाते थे। इस एकरूपता के होते हुए भी भिन्न-भिन्न प्रांतों में पुलिस शासन व्यवस्था का भिन्न-भिन्न आदर्श था। स्पष्टतया हम यह स्वीकार करेंगे कि कुछ प्रांतों में पुलिस शासन व्यवस्था ने योग्यता और ईमानदारी का सामान्य आदर्श स्थापित किया। इसके साथ-साथ हमें यह भी स्वीकार कर लेना चाहिये कि कुछ प्रांतों में पुलिस के कारनामे ऐसे थे जिनसे इस बात के समझने में देर न लगती थी कि वह पूरी तरह से अयोग्य और रिश्वतखोर है। जब कि हमने न्याय विभाग तथा केन्द्रीय शासन सेवा के बारे में इस बात का ध्यान रखा है कि उनमें पूर्ण ऐक्य हो और उनका आंतरिक गठन सुदृढ़ हो (मैं कह नहीं सकता कि केन्द्रीय शासन सेवा के सदस्यों को विभिन्न प्रांतों के पुलिस विभागों के मुख्य पदों पर कहां तक नियुक्त किया जायेगा), तब चाहे जितना ऐक्य और आंतरिक संश्लेषण एक न्याय विभाग द्वारा हम प्राप्त करें, चाहे जितना ऐक्य और आंतरिक संश्लेषण केन्द्रीय शासन सेवा विभाग द्वारा हम प्राप्त करें, मैं समझता हूं कि वह ऐक्य और आन्तरिक संश्लेषण पूर्ण रूप से निष्फल होगा, यदि पुलिस विभाग को सर्वथा प्रान्तीय सरकारों के नियंत्रण में छोड़

[श्री फ्रेंक एन्थॉनी]

दिया गया। इस सम्बन्ध में मैं यह कह देना भी उचित समझता हूं कि मेरी दृष्टि में यह अत्यन्त आवश्यक है कि केन्द्रीय नियंत्रण द्वारा शासन के आन्तरिक संश्लेषण को इस मात्रा तक अवश्य स्थापित किया जाये। इतने बड़े देश में यही स्वस्थ तथा स्थायी समाज के आधार होते हैं।

दूसरा विषय, जिस पर मैं केन्द्र का नियंत्रण देखना चाहूंगा, वह शिक्षा है। मैं जानता हूं कि मैं एक बड़े विवादास्पद प्रश्न को ले रहा हूं। मैं यह भी जानता हूं कि मेरी आलोचना की जायेगी और मेरे विचारों का वे व्यक्ति जोरदार शब्दों में खण्डन करेंगे जो मेरी समझ से अपने दृष्टिकोण के केवल प्रांत तक ही सीमित रखते हैं। साथ ही साथ मैं यह भी समझता हूं कि मेरे इस प्रस्ताव को कि समस्त देश में शिक्षा पर केन्द्र का नियंत्रण होना चाहिये महान शिक्षा आचार्यों का दूरन्देश व्यक्तियों का तथा कुशल राजनीतिज्ञों का समर्थन प्राप्त होगा। आज क्या हो रहा है? स्वतंत्रता के पदार्पण करते ही (यह कहने के लिये मैं विवश हूं) कुछ प्रांत शिक्षा क्षेत्र में बहुत गड़बड़ कर रहे हैं। प्रांत केवल भिन्न-भिन्न प्रकार की नीतियां ही नहीं वरन् बहुधा परस्पर प्रत्यक्ष विरोधी नीतियां बर्त्त रहे हैं। यह तो स्वयंसिद्ध है कि एक समान, संश्लेषणात्मक सुनिश्चित शिक्षा प्रणाली राष्ट्र में सामुहिकता और ऐक्य स्थापित करने के लिये एक महान शक्ति है। जितनी सच्चाई इस कथन में है, उतनी ही सच्चाई इस बात में भी है कि विभिन्न, विच्छेदकारी तथा विरोधी शैक्षिक नीतियां भी देश के टुकड़े-टुकड़े करने और उसके ऐक्य को नाश करने की बहुत अधिक शक्ति रखती हैं यद्यपि यह बात मैं खेद सहित कहता हूं, पर यदि हम इसकी सत्यता से भागने का प्रयत्न न करें तो यह सच है कि प्रान्तीयता तथा संकीर्णता की दृष्टि से निर्धारित शैक्षिक नीतियां हमारे देश में ऐसी वीभत्स किन्तु अनिवार्य दशा ला रखने का डर पैदा कर रही है, जिसमें सांस्कृतिक खाइयों, मानसिक कठघरों और शैक्षिक दीवारों की दूसरी तरफ देखना हमारे लिये दिन-प्रति-दिन असम्भव होता जायेगा। चूंकि शिक्षण से मेरा सम्बन्ध पर्याप्त मात्रा में घनिष्ट है, अतः इस बारे में मेरे मन में काफी व्यग्रता है। यदि समूचे भारत की शिक्षा को दृष्टि में रखा जाये, तो मैं कह सकता हूं कि शिक्षा से मेरा पर्याप्त घनिष्ट

सम्बन्ध है और मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं कि यदि केन्द्र ने इस बारे में ''प्रत्येक को अपनी मनमानी करने दो'' की नीति को मान लिया या उस पर चलने की स्वीकृति दे दी, तो यह बात ठीक मानी जायेगी कि हमने ऐसी शक्ति के साथ खिलवाड़ किया कि जिसकी हानि पहुंचाने की सम्भाव्यता, देश को छिन्न विच्छिन्न कर देने की सम्भाव्यता उस धार्मिक-साम्प्रदायिकता-जन्य-विच्छिन्नता-शक्ति से कहीं अधिक है जिसे कि हमने अब तक झेला है।

अन्त में श्रीमान्, जिस विषय पर मेरी समझ से केन्द्र द्वारा नियंत्रण होना चाहिये, वह स्वास्थ्य है और यह विषय उपेक्षणीय नहीं है। मेरी समझ से जो दो बड़ी समस्यायें इस देश के सामने हैं, वे हैं शिक्षा और स्वास्थ्य। अस्वास्थ्य तथा अपुष्टता से हम तब तक तनिक भी छुटकारा न पायेंगे जब तक कि हम सारे देश में उन्हें दूर करने का प्रयास समान रूप से आरम्भ न कर देंगे। मेरा तो यह विश्वास है कि इस समस्या के छोर को हम छू भी न सकेंगे यदि इसके निराकरण हमने भिन्न-भिन्न प्रांतीय सरकारों की दशा पर छोड़ दिया; क्योंकि यह तो निश्चित ही है कि इनमें से कुछ की नीति तो लंगड़ी होगी, कुछ की नीति असमान होगी, और कुछ की नीति विभिन्न-दिशा-गामी होगी।

अन्त में मैं डा. अम्बेडकर की भावना का समर्थन करता हूं जो उन्होंने अल्पसंख्यकों की ओर से इन प्रावधानों के समर्थन में प्रकट की थी। मैं जानता हूं कि यह एक कड़वा विषय है (जो कुछ भारत पर बीती है उसके पश्चात्) कि अल्पसंख्यकों के बारे में अथवा अल्पसंख्यकों की समस्याओं को दृष्टि में रख कर कुछ कहा जाये और मैं ऐसा नहीं करना चाहता। मैं अल्पसंख्यकों सम्बन्धी प्रावधान के पक्ष-समर्थन का विचार नहीं रखता हूं, क्योंकि उनको तो परामर्श दात्री-समिति ने स्वीकार कर ही लिया है, उनको कांग्रेस दल ने भी स्वीकार कर लिया है और उनको विधान-परिषद् ने भी स्वीकार कर लिया है। इस समस्या को सुलझाने में जिस विवेक और राज्यकौशल से कांग्रेस दल ने काम लिया है, उसके लिये उसे धन्यवाद तथा बधाई देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं। और सरदार पटेल को तो मैं खास तौर पर धन्यवाद और बधाई देना चाहता हूं, क्योंकि उन्होंने इस बारे में अपूर्व विवेक और राज्यकौशल का उपयोग किया है। इस देश में

[श्री फ्रेंक एन्थॉनी]

अल्पसंख्यक वर्तमान हैं, इस बात को तुच्छ समझने या टालने से कोई लाभ नहीं पर यदि हम इस समस्या के सम्बन्ध में वही दृष्टिकोण अपनायें जिसे कांग्रेस ने इस समस्या को सुलझाने के लिये अपनाया है, तो मैं समझता हूं कि दस वर्ष में इस देश में कोई अल्पसंख्यक सम्बन्धी समस्या नहीं रहेगी। श्रीमान्, मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मेरी समझ में तो सद्विवेकयुक्त एक भी अल्पसंख्यक वर्ग न होगा जिसकी इच्छा यह न हो कि यह देश न्यूनातिन्यून समय में असाम्प्रदायिक प्रजातंत्रीय राज्य के ध्येय को प्राप्त करने में सफल हो जाये। हमें विश्वास है और हमें विश्वास करना भी चाहिये कि इस ध्येय की प्राप्ति ही इस देश के प्रत्येक अल्पसंख्यक वर्ग के हितों की रक्षा की सबसे बड़ी प्रत्याभूति होगी। जैसा कि डा. अम्बेडकर ने बताया है कि हमने इस बारे में श्रेष्ठ-मध्यम मार्ग को अपनाया है और इस दिशा में अल्पसंख्यकों का सहयोग भी पर्याप्त मात्रा में लाभप्रद सिद्ध हुआ है। यह निर्विवाद सत्य है कि कांग्रेस से समझौता करने के लिये हम लोग आधी से अधिक दूर तक आगे बढ़े यद्यपि किसी भी ऐसे व्यक्ति के लिये जो अल्पसंख्यक वर्ग का ही सदस्य नहीं है, यह सुलभ नहीं कि वह अल्पसंख्यकों की कठिनाइयों और चिन्ताओं को ठीक-ठीक समझ सके, तथापि कांग्रेस दल ने इनको यथावत समझा है और इस कारण हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। मेरा यह विश्वास है कि इन प्रावधानों द्वारा हमने ऐसे श्रेष्ठ मध्य मार्ग को अपनाया है जिस पर धीरे-धीरे चल कर और स्वाभाविक तथा सहज परिवर्तन की रीति से, यदि हम सब अपने-अपने कर्त्तव्यों को पूरा करें, (और मुझे विश्वास है कि हम सब ऐसा करेंगे) तो हम इस देश में उस एकमात्र ध्येय को प्राप्त कर सकेंगे जिसको हम सब पाना चाहते हैं। अर्थात् वह ध्येय जिसके पाने पर हममें से प्रत्येक व्यक्ति यह सोचेगा कि वह सर्वप्रथम भारतीय है, सर्व पश्चात् भारतीय है और सर्वदा भारतीय है। कुछ दिन पहले जब मैंने कामनवेल्थ पार्लियामेंटरी कान्फ्रेंस में भाग लिया था तो जो अनुभूतियां मुझे हुईं उनमें से जिस एक अनुभूति की बड़ी गहरी छाप मेरे मन पर पड़ी, वह थी यह कि संसार की आंखें भारत की ओर लगी हुई हैं। लोग यह बात खूब समझते हैं कि जब भारत अपने पूरे उत्कर्ष पर पहुंचेगा तो सारे संसार में औद्योगिक और आर्थिक संतुलन में तथा सैनिक संतुलन में भी पर्याप्त अन्तर हो जायेगा। हम सबको यह विश्वास है, एक दिन

भारत अपने उचित स्थान को अवश्य प्राप्त कर लेगा। मैं उन लोगों में से हूं जिन्हें विश्वास है कि भारत का सर्वाधिक उत्कर्ष असाम्प्रदायिक प्रजातंत्रीय राज्य के अन्दर ही होगा। हो सकता है कि इस संविधान में कमियां और अपूर्णतायें हों, किन्तु ये तो आवश्यक उपायोजनों के अनिवार्य परिणामस्वरूप होती हैं। किन्तु मेरा विश्वास है कि इस संविधान में हमें इस देश में असाम्प्रदायिक प्रजातंत्रीय समाज की स्थापना की सुविधा तथा प्रत्याभूति दोनों ही का समावेश दिखाई देता है।

अन्त में, श्रीमान्, मैं यह कहना चाहता हूं कि हमारा पूरा उत्कर्ष इस मुद्रित विधान में लिखित शब्दों पर उतना निर्भर न होगा जितना कि वह इस बात पर होगा कि कितनी निष्ठा से हमारे देश के नेतागण तथा प्रशासकगण इस संविधान को कार्यान्वित करते हैं और किस निष्ठा से उन महान समस्याओं को सुलझाने का प्रयास करते हैं, जो आज हमारे सामने उपस्थित हैं तथा जिन आदर्शों में हमारी श्रद्धा है, उनकी पूर्ति मात्रा निर्भर करेगी, उस रीति पर जिससे कि हम इस संविधान के मूलभूत तत्त्वों का पालन करते हैं।

***श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, अपनी सुरचित योजना के लिये, जिसे उन्होंने सभा के समक्ष उपस्थित किया है तथा उस अथक परिश्रम के लिए जो उन्होंने उसके बनाने में लगाया है, तथा उस योग्यतापूर्ण और सुस्पष्ट व्याख्यान के लिए जो उन्होंने कल दिया था, डा. अम्बेडकर जिस बधाई के पात्र हैं उस बधाई को देने के सुखद कर्त्तव्य को पूरा करने में मैं भी सम्मिलित होता हूं।

श्रीमान्, विधान पर विचार करते समय हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि विधान स्वयं एक लक्ष्य नहीं है। विधान कुछ उद्देश्यों के लिये बनाया जाता है और वे उद्देश्य जनता का सामान्य कल्याण, राज्य की स्थिरता और व्यक्ति की उन्नति है। भारत में जब हम व्यक्ति के विकास तथा उन्नति की बात करते हैं तो हमारा आशय उसके आत्मज्ञान, आत्मोन्नति तथा आत्मसिद्धि से होता है। जब हम जनता की उन्नति की बात कहते हैं, तो हमारा आशय एक शक्तिशाली संगठित राष्ट्र से होता है।

श्रीमान्, हमारा विधान जनतंत्रात्मक है। जनतंत्र का अर्थ है, जनता का, जनता के लिये और जनता द्वारा राज्य जनतंत्र में जनता की सामूहिक बुद्धि किसी एक राजा को, अथवा किसी तानाशाह की और यहां तक कि कुछ व्यक्तियों के समूह की बुद्धि से भी श्रेष्ठ मानी जाती है। इसके अतिरिक्त जनतंत्र में यह भी माना

[श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा]

जाता है कि जनता का कल्याण ही राज्य का सर्वश्रेष्ठ ध्येय है। राजनैतिक संस्थाओं को उसी मात्रा में उपयोगी ठहराया जा सकता है जिसमें कि वे इस ध्येय की पूर्ति में सहायक होती हैं और इसके साथ जुड़ी हुई चमक-दमक से किंचित मात्र भी यह नहीं माना जाता कि वे उपयोगी भी हैं।

जनतंत्र के इन मूल तत्त्वों को ध्यान में रख कर हमें यह निर्णय करना है कि क्या यह संविधान, जो हमारे सामने रखा गया है, ऐसा है जो भारत की शक्तिशाली तथा एकतायुक्त राष्ट्र बना सकेगा और साथ ही व्यक्ति को यह सुविधा भी प्रदान कर सकेगा कि वह आत्मज्ञान, आत्मोन्नति तथा आत्म सिद्धि प्राप्त कर सके। भारत को चाहिये धन और जब हम यह कहते हैं कि भारत को धन चाहिये तो हमारा आशय यही होता है कि भारत निर्धन देश है और इसलिये उसको इतना शक्तिशाली बन जाना चाहिये जितना कि उसे संसार के किसी महान् देश से प्रतियोगिता करने के लिये तथा उसके समकक्ष खड़ा होने देने के लिये आवश्यक हो। एक समय था जब सोना, चांदी या देश के अन्य साधनों को धन समझा जाता था। किन्तु आज की हालतों में किसी राष्ट्र की सम्पत्ति मुख्यतया उसके नवयुवकों की भुजाओं में, उनके चरित्र में, उनकी मानसिक शक्तियों में तथा उनकी कार्य क्षमता में मानी जाती है। यदि इस दृष्टि से हम इस संविधान की परीक्षा करते हैं तो हमें इसमें कहीं भी कोई ऐसी बात या प्रावधान नहीं मिलता जिससे लोगों को काम करने के लिये अथवा उन्नति के लिये प्रेरणा मिले। यह ठीक है कि इसमें निदेशक सिद्धांत दिये हुये हैं। उनके अनुसार राज्य का यह प्रयास होगा कि वह सब को प्राथमिक शिक्षा, काम और सेवा युक्ति प्राप्त कराये। किन्तु राज्य का यह दायित्व न होगा कि वह लोगों को इस सिद्धांत के अनुसार, कि जो कोई भी काम नहीं करता उसको रोटी पाने का भी अधिकार न होगा, काम करने के लिये बाध्य करे। पर यह प्रश्न है महत्त्वपूर्ण कि इसमें ऐसा प्रावधान हो जिसके अधीन कि उन लोगों को काम करने के लिए बाध्य किया जा सके, जिसके सब अंग ठीक हैं और कार्य के लिये उपयुक्त हैं। किन्तु निदेशक सिद्धांत, जिनकी आलोचना मेरे एक विद्वान मित्र ने की है, राज्य पर ऐसा कोई कर्त्तव्य नहीं लादते जो उसे विधि की दृष्टि में उन अधिकारों की पूर्ति के लिये बाध्य करता हो, जो कि इस संविधान द्वारा दिये गये हैं। विधान में दिये हुये अधिकारों को देने के लिये कोई कानूनी बन्धन नहीं है। मेरा सुझाव है कि हम एक ऐसा प्रावधान बनायें कि यदि ऐसा कोई कानून बनाया जाये जो इन सिद्धांतों के प्रतिकूल हो

तो वह रद्द समझा जाये। इससे वर्तमान स्थिति में कोई अन्तर न होगा। इससे तो केवल क्षेत्राधिकार प्राप्त हो जायेगा और वह भी केवल न्यायालय को अवरोधाधिकार ही होगा जिसके द्वारा लोग न्यायालय से यह प्रार्थना कर सकेंगे कि वह जो कोई कानून लोकहित के प्रतिकूल है अथवा जो बालकों को प्राथमिक शिक्षा देने का निषेध करता है अथवा जो लोगों को काम और सेवा वृत्ति देने में बाधक है, उसे वह अमान्य घोषित कर दें। और न्यायालय को यह घोषणा करने का क्षेत्राधिकार होगा कि अमुक-अमुक कानून अमान्य हैं, क्योंकि यह चौथे अध्याय में दिये हुये सामान्य सिद्धांतों के प्रतिकूल हैं। निदेशक सिद्धांतों की जिस दूसरी बात पर मैं जोर देना चाहता हूं, वह यह है कि जनतंत्र के विकास के लिये अपेक्षित हैं स्वतंत्र और स्वस्थ लोक मत। मध्यकालीन युग में यह दशा थी कि कोई भी व्यक्ति स्वतंत्रतापूर्वक सोचने का साहस न कर सकता था, किन्तु आज के सभ्य युग में कोई भी स्वतंत्रतापूर्वक सोचने का साहस तो कर सकता है, किन्तु उसको ऐसा करने की सुविधा नहीं मिलती। इसके विपरीत हमें यह देखने को मिलता है कि चोर बाज़ारी से और अन्य ऐसे तरीकों से, जिन्हें कोई भी भला आदमी अपनाना पसन्द न करेगा, जिस आदमी ने बेशुमार दौलत इकट्ठी कर ली है वह बीसियों शिक्षित स्त्रियों को खरीद लेता है, सारी दुनियां में घूमता है, प्रांतों के बीसियों कर्ता-धर्ताओं को अपने वश में कर लेता है और चालाकी से प्रोपेगण्डा कर के लोगों के हृदयों को अपने वश में कर लेता है, और दुनियां में मानव जाति का शुभचिन्तक माना जाता है। क्या आप कह सकते हैं कि इस प्रकार की व्यवस्था को प्रजातंत्र का नाम दिया जा सकता है? क्या आप यह समझते हैं कि जिस देश में इस प्रकार की बातें सम्भव हो सकती हैं, उसमें ईमानदार और स्वतंत्र नागरिकों की उन्नति हो सकती है? श्रीमान्, इस महान् देश में इस प्रकार की कोई बात हो, इसके विरोध में मैं अपनी पूरी शक्ति से आवाज उठाता हूं और कहता हूं कि ऐसी बातों को न होने दिया जाये। धन के दुरुपयोग को तथा धन के एक हाथ में इतनी मात्रा तक एकत्रित होने को रोक कर आप यह कर सकते हैं, और आपको ऐसा करना भी चाहिये, कि ऐसी बातों का घटित होना असम्भव हो जाये। आपको प्रकाशन पर नियंत्रण करना चाहिये और निष्पक्ष तथा स्वतंत्र प्रकाशन की व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे कि प्रभावशाली स्वतंत्र मत बन सके। ऐसे दो अनुच्छेद हैं, अर्थात् 14 और, 18 उनमें यह दिया हुआ है कि राज्य प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति को कार्य करने के लिये विवश करेगा और एक दूसरे अनुच्छेद में यह दिया हुआ है कि प्रभावी स्वतंत्र मत की उन्नति में बाधक

[श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा]

तथा अवरोधक प्रकाशन नहीं करने दिया जायेगा। प्रभावी मत ही जनतंत्र का प्राण है।

निदेशक सिद्धांतों पर विचार करने के पश्चात् में अल्पसंख्यकों-सम्बन्धी अध्याय 14 को लेता हूं। जैसा कि मैं कह चुका हूं, इस महान् देश को एकता की आवश्यकता है। एकतापूर्ण राष्ट्र को बनाना हमारा उद्देश्य है। अल्पसंख्यकों के अधिकारों के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा चुका है। मेरे विचार से हमारे अल्पसंख्यक वास्तविक अर्थ में अल्पसंख्यक नहीं हैं और न वे उस अर्थ में अल्पसंख्यक वर्ग अथवा समूह माने जा सकते हैं जो कि राष्ट्रसंघ द्वारा स्वीकृत है। हम सब एक जाति के हैं। हम सब इस देश में सैकड़ों, हजारों वर्षों से रह रहे हैं। हम सबकी संस्कृति, रहन-सहन और विचार एक से हैं अतः मैं यह नहीं समझ सका कि अध्याय 14 में इन लोगों को विशेष अधिकार किस प्रयोजन से दिये गये हैं इनका फल यह होगा कि विधि-विरचित अल्पसंख्यक वर्ग पैदा हो जायेंगे और यह कहना कि यह सब तो दस वर्ष तक ही रहेगा, भूतकाल के उपदेशों को अनसुना कर देना है। अतीत काल में क्या हुआ? आपने इसी प्रकार से कुछ विशेष अधिकार मुसलमानों को दिये और यह आशा की कि वे विशेषाधिकार कालान्तर में स्वतः ही मिट जायेंगे, और मुस्लिम सम्प्रदाय इन विशेषाधिकारों की निरर्थकताओं को समझ जायेगा और इन विशेषाधिकारों का परित्याग कर देश की सामान्य जनता में घुलमिल जायेगा। पर उसका फल देश का विभाजन हुआ। यदि एक बार आप किसी जन समूह को विशेषाधिकार दे देते हैं और यह इसलिये नहीं देते कि वह किसी विशेष प्रकार्य की पूर्ति कर रहा है अथवा देश हित के लिये कुछ कर रहा है, वरन् इसलिये देते हैं कि वह किसी समुदाय अथवा श्रेणी विशेष का अंग है, तो आप उस दोष को जो जनतंत्रों में साधारणतया पाया जाता है, अमिट बना देते हैं अर्थात् ऐसी श्रेणियों अथवा समूहों को पैदा कर देते हैं, जो राष्ट्र के हित के प्रतिकूल कार्य करते हैं, जो अपने स्वार्थों की अथवा उन समुदायों अथवा श्रेणियों के हितों की पूर्ति में लगे रहते हैं जिनके वे अंग है। दलबन्दी और कूटनीति से न तो उनके समूह या वर्ग को लाभ होता है और न देश को ही। पर उस दल के नाम से वे अपने स्वार्थों की पूर्ति करते रहते हैं। एकता पूर्ण राष्ट्र के निर्माण में तो यह रुकावट डालेगा ही, पर साथ ही साथ यह उन समूह या वर्गों को भी लाभदायक नहीं होगा और जैसा कि मैंने कहा है यह सामान्यतया जनतंत्र में पाये जाने वाले दोषों को अमिट बना देगा। अतः मैं यह

निवेदन करूंगा कि इस अध्याय को पूर्णतया हटा देना ही श्रेयस्कर होगा। और यदि पिछड़े हुये वर्ग को अथवा अन्य किसी वर्ग को कोई संरक्षण का प्रोत्साहन देना ही हो तो उसके लिये अन्य उपाय अपनाये जा सकते हैं जैसे कि योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियां देना, अन्य प्रकार की आर्थिक सहायता देना, ऐसी संस्थायें खोलना तथा अन्य सुविधायें देना जो उनकी उन्नति के लिये और उन्हें ऊंचा उठाने के लिये आवश्यक हों। लेकिन राज्य संस्था में विभाजन स्थापित करना और राष्ट्र में विभाजन की नींव डालना राष्ट्र की सदोन्नति के लिये घातक होगा और हमारे तथा हमारे वंशजों के लिये अत्यन्त हानिकर होगा।

श्री टी.टी. कृष्णमाचारी (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, सभा के मैं उन लोगों में से हूं जिन्होंने डा. अम्बेडकर को बड़े ध्यान से सुना। मैं उनके उत्साह तथा उस कार्य की मात्रा से परिचित हूं जो उन्हें इस विधान का मसौदा बनाने में करना पड़ा। साथ ही साथ मेरा यह भी विश्वास है कि इस विधान के मसौदे पर जो हमारे लिये आज कल इतना महत्त्व रखता है, जितना ध्यान दिया जाना चाहिये था उतना ध्यान मसौदा-समिति ने इसे नहीं दिया है। सभा को शायद यह विदित है कि उसने जो सात सदस्य नियुक्त किये थे, उनमें से एक ने सभा से त्यागपत्र दे दिया था और उसके स्थान पर अन्य सदस्य रखा गया था। एक का स्वर्गवास हो गया, किन्तु उसकी जगह पर कोई व्यक्ति नहीं रखा गया। एक अमरीका में था और उसकी जगह किसी अन्य व्यक्ति द्वारा नहीं भरी गई तथा एक और सदस्य राजकार्य में लगा हुआ था। इतने रिक्त स्थान थे। एक या दो व्यक्ति दिल्ली से दूर थे और सम्भवत: अस्वस्थ होने के कारण उपस्थित न हो सके। अत: अन्त में यह हुआ कि इस विधान का मसौदा बनाने का काम डा. अम्बेडकर पर आ पड़ा और नि:संदेह हम उनके प्रति कृतज्ञ हैं कि इतने प्रशंसनीय ढंग से उन्होंने इस कार्य को पूरा किया। परन्तु जिस बात को मैं कहना चाहता हूं वह तो वास्तव में यह है कि ऐसे विषय के लिये जितने ध्यान की आवश्यकता थी उतना ध्यान पूरी समिति इसे नहीं दे सकी। अप्रैल में किसी समय विधान-परिषद् के कार्यालय ने मुझे तथा अन्य सदस्यों को यह सूचित किया कि आपने यह निश्चित किया था कि संघाधिकार समिति, संघ-विधान समिति तथा प्रान्तीय विधान समिति के सदस्यगण और कुछ अन्य निर्वाचित सदस्य सम्मिलित होंगे और सभा के सदस्यों द्वारा तथा सामान्य जनता द्वारा सुझाये गये संशोधनों का पर्यालोचन करेंगे। अप्रैल

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

के अन्त में दो दिन तक बैठक हुई और मेरा विश्वास है कि कुछ मात्रा में अच्छा काम हुआ और मैं देखता हूं कि डा. अम्बेडकर ने समिति की कुछ सिफारिशों को स्वीकार किया—इसके पश्चात् इस समिति के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं सुना गया। मैं समझता हूं कि मसौदा-समिति—कम से कम डा. अम्बेडकर और श्री माधवराव—उसके पश्चात् बैठी और संशोधनों का निरीक्षण किया और उन्होंने कुछ सुझाव रखे हैं परन्तु यह बैठक रस्म के विचार से मसौदा-समिति की बैठक नहीं कहीं जा सकती। यद्यपि इस विषय में, मैं आपकी व्यवस्था का विरोध नहीं करूंगा, किन्तु फिर भी साधारणतया यह बात ठीक मानी जायेगी कि जिस समय समिति रिपोर्ट दे देती है, वह अपने कार्य भार से मुक्त हो जाती है और मुझे यह स्मरण नहीं है कि आपने कभी मसौदा-समिति को भी पुनः संगठित किया। मैं इन बातों का इसलिये जिक्र कर रहा हूं कि हमारे विधान पर उतना दत्तचित्त होकर ध्यान नहीं दिया गया जितने की आवश्यकता थी, और कि यदि श्री गोपालस्वामी आयंगर या श्री मुंशी या उन जैसे कुछ अन्य व्यक्ति समस्त बैठकों में उपस्थित होते तो ध्यान उस पर दिया जा सकता था।

श्रीमान्, मैं आपका ध्यान विधान के एक अंग की ओर आकर्षित करूंगा अर्थात् विधान में अर्थ-सम्बन्धी प्रावधानों की ओर। आपने विशेषज्ञों की एक समिति नियुक्त की थी। यद्यपि समिति में प्रमुख व्यक्ति थे तदापि मेरे विचारानुसार जिस प्रकार समिति ने कार्य सम्पादन किया, वह संतोषजनक नहीं था। मुझे उस समिति के समक्ष अपना वक्तव्य देने का अवसर मिला था और मैं उस सभा से यह विचार लेकर बाहर निकला था कि समिति के सदस्यों ने, जो विषय सौंपा गया है, उसकी गहनता को नहीं समझा और न वे उस विषय पर मसौदा-समिति को सलाह देने की क्षमता ही रखते थे। श्रीमान्, पकौड़ी का स्वाद उसके खाने से पता चलता है। मेरे पास विशेषज्ञ-समिति की रिपोर्ट है और मैं उससे संतुष्ट नहीं हूं। परिस्थिति ऐसी थी कि विशेषज्ञ-समिति की रिपोर्ट का पर्यालोचन यह सभा नहीं कर सकी और मेरा विश्वास है कि मसौदा-समिति को ही न्यूनाधिक रूप से स्वयं यह निश्चय करना पड़ा कि उन सिफारिशों को विधान में समाविष्ट किया जाये या नहीं।

श्रीमान्, विशेषज्ञ-समिति की रिपोर्ट के सम्बन्ध में मुझे कुछ बातें कहनी हैं। विशेषज्ञ-समिति को स्वयं अपने ऊपर ही विश्वास न था। श्रीमान्, यद्यपि वे निदेश

जिनके द्वारा आपने समिति के प्रकार्यों का परिसीमन किया था, पर्याप्त व्यापक थे—और वे इस अर्थ में व्यापक थे कि उनके अधीन समिति को यह अधिकार था कि वे भारत शासन और प्रांतीय शासनों के गत दस वर्ष के अनुभवों को ध्यान में रख कर, यदि वे केन्द्रीय तथा प्रांतीय विषयों का परिगणन करने वाली सूचियों में वे विभिन्न आय मदों में परिवर्तन करना आवश्यक समझें तो, उनमें परिवर्तन कर दें, तदापि उन्होंने उस अवसर से लाभ न उठाया जो आपने उन्हें दिया था। इसके विपरीत आपने जो अवसर उनको दिया उसके उपयोग करने का उन्होंने प्रयत्न नहीं किया, बल्कि इसके विपरीत उन्होंने अपनी रिपोर्ट में यह स्पष्ट कहा कि देश की वर्तमान परिस्थिति में उन्होंने यही उचित समझा कि देश की आर्थिक व्यवस्था में किसी क्रांतिकारी कृति की अपेक्षा तो उसको उसी रूप में स्वीकार करना अच्छा है। श्रीमान्, मुझे भय है कि यह बात ठीक नहीं हुई।

दूसरी बात, जो मै कहना चाहता हूं वह रिपोर्ट के 49 पैरा के सम्बन्ध में है, जो प्रांतीय सूची की संख्या 48, 49 और 51 मदों के बारे में है। 51 का सम्बन्ध कृषि पर आय-कर से है। 48 और 49 कृषि भूमि पर भूसम्पत्ति-कर, तथा उत्तराधिकार-कर के सम्बन्ध के हैं। कृषि-सम्पत्ति और जो सम्पत्ति कृषि-सम्पत्ति नहीं है, उन दोनों में जो भेद है आजकल की हालतों में उस क्षेत्र का कुछ अधिक महत्त्व नहीं है। मेरे विचार से उनका यह समझना बिलकुल ठीक था। पर उनको यह सुझाव करने का साहस न हुआ कि विधान के मसौदे में से इस भेद का जो की विशिष्ट कारणों द्वारा भारत सरकार एक्ट से लिया गया था, निकाल दिया जाये। श्रीमान् यदि सभा मुझे आज्ञा दे तो मैं इस अन्तर को दूर करने के लिये संशोधन रखने का प्रस्ताव करूं और वह इस कारण से नहीं कि प्रांतों के अधिकारों का अपहरण किया जाये, पर इस कारण से कि मेरी समझ में यही एकमात्र मार्ग है, जिसके द्वारा आय-कर का और भूसम्पत्ति-कर का एकीकरण करके, चाहे वह कृष्य सम्पति पर हो अथवा अन्य सम्पति पर, प्रांतों की संख्या में वृद्धि की जा सके और ऐसे एकीकरण का लाभ प्रांतों को प्राप्त हो सके।

श्रीमान्, विशेषज्ञ-समिति की एक अन्य सिफारिश हानिकर है। दूसरी सूची के 58वें पद पर उल्लिखित विक्रय-कर के सम्बन्ध में उनका यह सुझाव है कि इसकी परिभाषा इतनी व्यापक कर दी जानी चाहिये कि इसमें उपभोग-कर भी सम्मिलित

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

समझ लिया जाये। अमरीका राज्य के अनुभव के आधार पर ही यह सिफारिश की गयी है जो मेरे विचार से अत्यन्त हानिकर सिफारिश है। इस सिफारिश की झलक 58वें पद पर उल्लिखित विक्रय-कर में भी मिलती है, किन्तु उसमें यह बात होनी न चाहिये थी।

विशेषज्ञ-समिति ने ये भी सिफारिशें की हैं कि प्रांतों का आय-कर में जो 50 प्रतिशत हिस्सा है उसे बढ़ाकर 60 प्रतिशत कर दिया जाये और निगम करों से पूर्व आय को तथा संघ-परितात्र-करों की आय को भी आय-कर की पूर्ण राशि में मिला दिया जाये। किन्तु विशेषज्ञ-समिति की इन सिफारिशों को मसौदा-समिति ने अस्वीकार कर दिया है अत: मैं तो यह मानता हूं कि या तो मसौदा-समिति इस बात के लिये अयोग्य थी कि वह विशेषज्ञ-समिति की आधे मत से की गई सिफारिशों की यथोचित जांच कर सके अथवा मसौदा-समिति ने यही सोचा कि जाते हुये पथ पर चलना ही अच्छा है और इसलिये वर्तमान-व्यवस्था को ही अपना लेना चाहिये। और जहां तक मैं समझता हूं, विशेषज्ञ-समिति के निश्चयों का आधार भी न्यूनाधिक मात्रा में यही विचार है।

अब मैं एक नये प्रावधान को लेता हूं जो कि विधान के मसौदे की आर्थिक धाराओं में बनाया गया है। यह अनुच्छेद 260 है। श्रीमान्, अनुच्छेद 260 में अर्थ-प्रबन्धन कमीशन का उल्लेख है। श्रीमान्, यह सच है कि आपने विशेषज्ञ-समिति को जो निदेश पद दिये थे उनमें आपने स्वयं यह सुझाव सम्मिलित किया था। किन्तु मैं तो यही सोचता हूं कि क्या हमारे लिये यह कोई आवश्यक बात है कि हम संविधान में ऐसे अनुच्छेद का समावेश करें जैसा कि अनुच्छेद 260 है और जो इसकी केवल एक बात के बारे में ही, अर्थात् आयोग की नियुक्ति के बारे में ही मान्य आदेशमूलक है। उसको जो कर्त्तव्य सौंपे गये हैं, वे हैं प्रांतीय और केन्द्रीय शासनों के बीच में विवेचना करना और एक प्रकार के अनुदान-आयोग के रूप में कार्य करना। किन्तु इन सब कामों को तो कोई भी ऐसा आयोग कर सकेगा जिसे किसी भी ऐसी विधि ने ऐसा करने के लिये उपयुक्त मान लिया हो, जिस विधि को कि पार्लियामेंट ने बनाया है। पार्लियामेंट को किसी भी ऐसे आयोग को नियुक्त करने का तब तक अधिकार है, जब तक कि इस आयोग

की सिफारिशें केन्द्रीय तथा प्रांतीय शासन के लिये आदेश मूलक न हों और अनुच्छेद 260 की वर्तमान शब्दावली के अधीन यही अवस्था आजकल भी है। अत: इस दृष्टि से कि इस विधान की आर्थिक समस्याओं पर विचार करने के लिये हमें समय नहीं मिला है और आय के शीर्षकों का विभाजन हम केन्द्र और प्रांतों में ठीक प्रकार से नहीं कर पाये हैं। मेरे विचार से यह समझदारी होगी कि एक कमीशन नियुक्त करने के लिये इसी विधान में हम एक प्रावधान रखें और यह कमीशन देश के समस्त आर्थिक ढांचे पर विचार करे और प्रांतों तथा केन्द्रों की सूचियों के शीर्षकों में परिवर्तन करने के लिये भी सिफारिश करे। वस्तुत: इस बात की सिफारिश विशेषज्ञ-समिति ने की तो है किन्तु वह इस विषय में और आगे नहीं बढ़ी। मैं यह चाहता हूं कि इस संविधान में यह बात रखी जाये कि एक आर्थिक कमीशन नियुक्त किया जायें और उस कमीशन को दोनों एक और दो सूचियों में परिवर्तन करने के लिये सिफारिशें करने का अधिकार दिया जाये तथा उन सिफारिशों को इस विधान का अंग मानकर अपना लिया जाये और ये सिफारिशें संविधान में संशोधन करने को अनावश्यक झगड़े में पड़े बिना ही भारत सरकार और प्रांतीय सरकारों के लिये मान्य हों।

श्रीमान्, मैं नहीं जानता कि यह बात सम्भव है या नहीं, पर इस प्रस्ताव को पेश करने वाला यहां उपस्थित नहीं हैं—यदि वे यहां होते तो कदाचित् इस विषय पर कुछ प्रकाश डाल सकते थे—पर मेरा यह विचार है कि विधान में इस प्रकार का प्रावधान रखने का प्रयत्न किया जाये। श्रीमान्, मैं केवल यही कहूंगा कि जब इस विषय के इस पहलू पर सोच-विचार किया गया उस समय उन दोषों का महत्त्व ठीक-ठीक न समझा गया जो 1935 के अधिनियम में उल्लिखित वैत्तिक शक्तियों के दुरुपयोग से पैदा होते थे। और उन प्रांतों की आय बढ़ाने के लिये योजनाओं पर विचार करने का गम्भीर प्रयत्न नहीं किया गया, जिनको अतिरिक्त साधनों की बड़ी आवश्यकता है तथा इस देश में उचित तथा सभी के लिये न्यायपूर्ण कर प्रणाली को स्थापित करने का प्रयत्न नहीं किया गया। श्रीमान्, स्थान ग्रहण करने के पूर्व मैं एक या दो विषयों को और लूंगा, वे ये हैं। श्रीमान्, प्रस्तावक महोदय ने एक शक्तिशाली केन्द्र की आवश्यकता का जिक्र किया है। मैं देखता हूं कि श्री एन्थॉनी ने भी उन्हीं विचारों का समर्थन किया है। इस दशा में जब कि हमें यह निश्चयपूर्वक ज्ञात नहीं कि कल हमारे देशों में क्या हालतें पैदा हो

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

जायेंगी तथा इस बात को ध्यान में रख कर कि स्वतंत्रता प्राप्त करने का हमारा मुख्य उद्देश्य निम्नतम श्रेणियों की हालत को अच्छा बनाना था अर्थात् साधारण आदमियों की आर्थिक अवस्था को उन्नत करना था। मैं यह मान लेता हूं कि इस ध्येय को प्राप्त करने के लिये एकमात्र साधन यही है कि, केन्द्र को इतनी शक्तियां दे दी जायें जिससे कि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये जो बातें अवश्य की जानी चाहिए, उनके सम्बन्ध में आवश्यक निदेश दे सके। यदि शक्तिशाली केन्द्र के बनाने से प्रांतों के अस्तित्व को यथावत् रखने में कोई कठिनाई पैदा ना हो तो मैं भी शक्तिशाली केन्द्र बनाने के सर्वथा पक्ष में हूं। श्रीमान, हाल में एक प्रसिद्ध वकील और भारत सरकार के एक भूतपूर्व सदस्य ने मेरे पास पत्र भेजा है, जिसमें उन्होंने यह शिकायत की है कि वर्तमान समय में प्रांत पथभ्रष्ट हो रहे हैं और प्रांत की आंतरिक आर्थिक व्यवस्था में संकीर्ण तथा प्रांतीयता की दृष्टि से बनाये गये प्रतिबंधों का आरोप कर रहे हैं और उन्होंने यह बात भी लिखी है कि वर्तमान स्थितियों में संघात्मक शासन-पद्धति के स्थापन के बारे में उन्हें यह शंका है कि यह कदम ठीक न होगा और उन्होंने यह भी प्रश्न उठाया है कि क्या हमारे लिये यह उचित न होगा कि हम एकात्मक शासन-पद्धति को पुनः अपना लें। और श्रीमान्, मैं यह आवश्यक समझता हूं कि उन्होंने जो बातें अपने पत्र में उठाई हैं, उन पर विचार किया जाये। उनकी उठाई हुई बातों में तथ्य है और जब इस विचार से हम इस ओर देखते हैं तो हम यह अनुभव करते हैं कि एक शक्तिशाली केन्द्र आवश्यक है। मैं यह भी कहूंगा कि कुछ विषयों में केन्द्र के निदेश कदाचित् लाभदायक होंगे। मेरे माननीय मित्र श्री जगजीवन राम को केन्द्रीय सरकार के अपूर्ण अधिकारों के कारण अपनी श्रम सम्बन्धी नीति को चलाने में बड़ी कठिनाइयां हुई हैं। यह बात ठीक है कि डा. अम्बेडकर ने कहा है कि 60वें अनुच्छेद का शब्द विन्यास अब ऐसा है कि समवर्ती विषयों के सम्बन्ध में केन्द्र के अधिकारों का इतना विस्तार हो जायेगा कि प्रशासन सम्बन्धी आदेश भी दिये जा सकें; जो बात कि अब तक नहीं की जा सकती थी, पर मैं यह नहीं मानता कि अनुच्छेद 60 की वर्तमान शब्दावली में यह अधिकार स्पष्टतया उल्लिखित है और यही बात श्री जगजीवन राम कई बार कह चुके हैं।

और सदा ही यह मेरी धारणा रही है कि श्रम-सम्बन्धी विषयों में केन्द्र को इस कारण से अधिक शक्ति दी जानी चाहिये कि वह इस दशा में नीति सामंजस्य

कर सके और ऐसा करने के लिये दूसरा कारण यह भी है कि प्रांतों में निहित-हित प्रगतिमूलक श्रम विधान का बनाया जाना रोक देते हैं; अतः सम्भवतः मैं यह सुझाव रखना पसंद करूंगा कि या तो अनुच्छेद 60 में स्पष्ट रीति से यह उल्लेख कर दिया जाये कि समवर्ती विषयों के बारे में केन्द्र को यह शक्ति प्राप्त होगी कि वह अधिशासी निर्देश दे सके और या श्रम विधान के विषय को प्रथम सूची में रख दिया जाये।

यद्यपि मुझे ऐसा लगता है कि मैं उनके और उन दूसरे विचारों का विरोध करूं, जो उन्होंने केन्द्र को शक्तिशाली बनाने के सम्बन्ध में प्रकट किये हैं—तथापि एक और विषय है, जिसमें श्री एन्थॉनी के विचारों से मुझे कुछ सहानुभूति है—और वह विषय है लोक-स्वास्थ्य। लोक-स्वास्थ्य सम्बन्धी कुछ ऐसी बातें हैं, जिनमें केन्द्रीय सरकार बहुत कुछ कर सकती है। यह सच है कि इस देश में रोगों का साम्राज्य है। यह बात नहीं है कि वह केवल मद्रास, बम्बई या संयुक्तप्रान्त ही के भाग्य में हों। अतः लोक-स्वास्थ्य सम्बन्धी कानून बनाने में तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी खोज करने के लिये संस्थाओं का संचालन करने में, मैं समझता हूं कि केन्द्र को कुछ अधिकार दे दिया जाये और इस प्रकार यह विषय सूची 3 में रख दिया जाये। किन्तु श्रीमान्, इस विचार से कि हमारे सामने सबसे बड़ा काम यही है कि हम आर्थिक उद्देश्यों की जल्द से जल्द पूर्ति करें, मैं यह मानता हूं कि केन्द्र शक्तिशाली बनाया जाये; किन्तु साथ ही मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि इस विचारधारा पर मैं अन्ततः चलने को तैयार नहीं हूं और कल जो बातें यहां हुई हैं, उन्हीं के कारण मैं ऐसा नहीं करना चाहता। श्रीमान्, मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मेरा यह आशय नहीं है कि मैं किसी विचार-संघर्ष को यहां आरम्भ कर दूं। मैं जानता हूं कि उपयुक्त समय पर यह आरम्भ किया जा सकेगा। किन्तु जिन लोगों के बारे में मेरी सदैव ही यह धारणा रही है कि वे अत्यन्त मनीषी, अत्यन्त सभ्य तथा कला प्रेमी है, उन्हीं लोगों को मैंने कल कुछ मात्रा में असहिष्णुता, कुछ मात्रा में विचार कट्टरता, कुछ मात्रा में विचारहीनता प्रदर्शित करते देखा। श्रीमान्, मेरा संकेत एक ऐसी साम्राज्य-प्रवृत्ति से है, जो हम पर छा जाना चाहती है और यदि उस प्रवृति को अवाधरूपेण अन्त तक कार्य करने दिया गया, तो वह उस प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप विशेष प्रकार के घोर-निरंकुश-शासन की स्थापना कर देगा, जो प्रतिक्रिया कि इस प्रवृति के भावी भारत कि संघ की इकाइयों में कार्य

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

करने के प्रयास-फलस्वरूप उत्पन्न होगी। श्रीमान, मेरा संकेत भाषा की साम्राज्य-प्रवृति की ओर है! साम्राज्य कई प्रकार के होते हैं और साम्राज्य आदर्श को फैलाने के लिये भाषा साम्राज्य को फैलाना भी एक बड़ा उत्तम मार्ग है। यह निर्विवाद सत्य है कि इस देश का एक बड़ा भाग एक विशेष भाषा बोलने वाला है। यदि मैं हिन्दी भाषा-भाषी व्यक्ति होता, तो मैं भी अवश्य उस दिन का स्वप्न देखता, जिस दिन कि हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश शक्तिशाली और सुसंगठित राष्ट्र बन जायेगा और जिसमें होंगे, संयुक्तप्रांत, मध्यप्रान्त के उत्तरी भाग, बिहार के कुछ भाग, मत्स्य संघ, मध्य भारत, विन्ध्य प्रदेश। और जिसमें पुनः चमक उठेगा, श्रीमान्, वह महान् गौरव जो हमें अशोक के साम्राज्य में, विक्रमादित्य के साम्राज्य में और हर्षवर्धन के साम्राज्य में मिलता है। यह है ऐसा स्वप्न, जो भावना को गुदगुदा देता है। यदि कोई ऐसी प्रवृति का हो और इस प्रदेश का हो, तो स्वभावतः ही उसकी कल्पना उसकी न्यूनाधिक मात्रा में भूतकाल के गौरव जगत में खींच ले जाती है, उस गौरव जगत की ओर जिसे हम आज पुनः स्थापित करना चाहते हैं किन्तु क्या मैं पूछूं कि और प्रदेशों का क्या हाल होगा? उन क्षेत्रों में शिक्षा का जो स्तर हमने प्राप्त कर लिया है और उसके साथ-साथ स्वतंत्रता के जो विचार उत्पन्न हो चुके हैं, उनके बाबत क्या हो? श्रीमान्, सच मानिये दक्षिणी भारत में अंग्रेजी भाषा के लिये जो घृणा थी, वह अब जाती रही हैं अतीत में हम अंग्रेजी भाषा को पसन्द नहीं करते थे। मैं इससे घृणा करता था, क्योंकि मुझे शेक्सपीयर और मिल्टन का अध्ययन करने के लिये विवश किया गया था और इनके अध्ययन के लिये मेरी अभिरुचि नहीं थी। किन्तु आज यह ऐसा विषय नहीं है, जिसके बारे में कोई बाध्यता हो। परन्तु केन्द्रीय परिषद् का सदस्य होने के लिये और अपने लोगों की शिकायतें रखने के लिये यदि हमें हिन्दी सीखने के लिये विवश किया जायेगा, तो कदाचित इस उम्र में ऐसा करना मेरे लिये असम्भव होगा और ऐसा करने के लिये मैं सम्भवतः राजी भी न होऊंगा और वह इसीलिये कि आप ऐसा करने में मुझे विवशता के शिकंजे में जकड़ेंगे। मैं इस विषय पर बाद में और उपयुक्त समय पर अपने विचार प्रकट करूंगा, पर मैं यह अनुभव करता हूं कि संयुक्तप्रांत, मध्यप्रांत तथा बिहार के कुछ भाग के मेरे माननीय मित्र इस बात को याद रखें कि यद्यपि वे अपनी भाषा के लिये उत्कण्ठित हैं और चाहते हैं कि अंग्रेजी भाषा को इस देश से मिटा दिया जाये, पर समस्त भारत में ऐसे मनुष्य भी काफी हैं, जो हिन्दी

भाषा को नहीं समझते। श्रीमान्, मेरे एक माननीय मित्र ने अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिये कल एक उपमा का आश्रय लिया है। मुझे उपमायें सुनने का अभ्यास है। मेरा एक मित्र जो इस समय यही कहीं निकट में ही हैं, उपमा और दृष्टान्त देने में बहुत ही कुशल हैं। पर मेरे मित्र ने किस उपमा का प्रयोग किया। उसने कहा ''क्या ऐसे व्यक्तियों की संख्या नहीं है, जो अंग्रेजी नहीं समझते; पर वे उन लोगों का विश्वास करते हैं, जो अंग्रेजी जानते हैं?'' हां, इस सभा में तथा अन्यत्र ऐसे व्यक्ति है, जो अंग्रेजी नहीं जानते। यह भी हो सकता है कि मेरा पड़ौसी मद्रासी अंग्रेजी न समझे और वह मुझमें विश्वास करने के लिये उद्यत हो, पर इसका आशय यह नहीं है कि दक्षिण भारत का निवासी किसी संयुक्तप्रांत निवासी व्यक्ति में विश्वास करने में संतुष्ट हो, फिर चाहे पंडित बालकृष्ण शर्मा कितने ही भले हों और दिल्ली से दक्षिण तक चाहे मैं उनके कितने ही आश्वासनों का प्रचार करूं। मैं जानता हूं कि वे एक आदर्श विधान निर्मायक हैं, साधु आत्मा हैं, कवि हैं तथा उनमें अन्य ऐसे बहुत से गुण हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि केवल इसलिये कि किसी विशेष क्षेत्र के ऐसे व्यक्ति, जो एक भाषा को नहीं समझते, उन लोगों का विश्वास करें, जो उस भाषा को समझते हैं और जो कि शासन प्रबन्ध के संचालन करने के लिये हजारों मील दूर हैं। क्या सभा के उन सदस्यों के लिये जो केवल मुँहबाये बैठे रहते हैं और वह इसलिये कि जो कुछ कहा जाता है, उसे वे नहीं समझ सकते, क्या उन लोगों के प्रति सभा के किसी भी व्यक्ति ने एक क्षण के लिये भी कुछ भी ध्यान दिया है? सम्भव है, जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री सत्यनारायण ने, जो दक्षिण में हिन्दी का निष्फल प्रचार कर रहे हैं, मुझसे कहा कि हिन्दी में जो भाषण दिये जाते हैं, उनमें बहुत अधिक सार नहीं होता। कदाचित् बात ऐसी ही है, परन्तु फिर भी मैं जानना चाहूंगा कि क्या कहा गया और उन बातों का जवाब देना चाहूंगा। ऐसी स्थिति में मैं पूर्णतया असहाय हो जाता हूं, जब कि मुझे अपनी सम्पूर्ण शक्ति मेरे देश के भविष्य-लाभ के लिये तथा मेरे लोगों के भविष्य-लाभ के लिये जो कुछ कहा जाता है, उसे समझने में लगानी पड़ती है। इस प्रकार की असहिष्णुता हमें भयभीत करती है कि जिस शक्तिशाली केन्द्र की हमें आवश्यकता है, उसका आशय सम्भवतः उन लोगों के लिये दासता हो, जो लोग विधान-सभा की भाषा अथवा केन्द्र की भाषा नहीं बोलते हैं। श्रीमान्, मैं इस आधार पर दक्षिण निवासियों की ओर से चेतावनी दूंगा कि दक्षिण में ऐसे विचार के व्यक्ति हैं, जो पृथक होना चाहते हैं और यह हमारा

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

कर्त्तव्य है कि हम अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर उन विचारों को न पनपने दें, किन्तु अपने हिन्दी-साम्राज्य के प्रिय विचार को बार-बार यहां दुहरा कर हमारे युक्तप्रांत के मित्र इस दिशा में हमारी कोई सहायता नहीं करते। श्रीमान्, मेरे युक्तप्रांत के मित्रों के हाथ में यह बात है कि वे अखण्ड भारत की स्थापना करें या हिन्दी भारत की। उनको इन दोनों उद्देश्यों में से एक चुनना है और अपने निश्चय को इस संविधान में सम्मिलित कर देना है। किन्तु यदि वे हमें छोड़ देंगे, तो ठीक है, हम अपने भाग्य को कोसेंगे; किन्तु साथ ही यह भी भरोसा रखेंगे कि हमारा भविष्य सुन्दर होगा।

***अध्यक्ष:** सभा अब दोपहर के भोजन के लिये स्थगित होती है। कार्यालय द्वारा मुझे यह कहा गया है कि पत्रों के वितरण करने में कुछ कठिनाइयों का अनुभव किया गया है, क्योंकि कुछ सदस्यों ने अपने आगमन को सूचना नहीं दी है या अपना पता नहीं दिया है। सदस्यों से मैं निवेदन करता हूं कि वे सूचना-विभाग में अपने पते दे दें, जिससे कि उनके पास पत्र भेजे जा सकें। जिन्होंने ऐसा नहीं किया है, वे कृपया ऐसा कर दें।

अब हम तीन बजे तक स्थगित रहेंगे।

इसके बाद परिषद् तीन बजे तक दोपहर के भोजन के लिये स्थगित हुई।

दोपहर के भोजन के बाद तीन बजे परिषद् की बैठक उपाध्यक्ष महोदय (डा. एच.सी. मुखर्जी) की अध्यक्षता में फिर हुई।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान् उपाध्यक्ष महोदय, माननीय डॉ. अम्बेडकर को विधान की सुन्दर व्याख्या के लिये, जो उन्होंने विधान-परिषद् के सम्मुख उपस्थित की है, मैं धन्यवाद देता हूं। श्रीमान्, मैं उनके साथियों को भी धन्यवाद देता हूं, जिन्होंने इस विधान के बनाने में, जिसे कि सभा के सम्मुख उपस्थित किया गया है, छः माह तक घोर परिश्रम किया। उन्हें समुचित मान देने के पश्चात् यदि मैं यहां यह न कहूं कि मसौदा-समिति उन विचारणीय बातों तथा अधिकारों से आगे बढ़ गई, जो इस माननीय सभा द्वारा उसे दिये गये थे, तो मैं अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जाऊंगा। श्रीमान्, यदि मुझे ठीक-ठीक याद है, तो मसौदा-समिति को सभा ने अपने निर्णयों को विधेयक के रूप में रखने के लिये निर्देश दिया था और एक माननीय सदस्य द्वारा सभा में रखे गये उत्तरवर्ती प्रस्ताव द्वारा उसको कुछ ऐसे परिवर्तन करने का अधिकार भी दिया था, जो विधेयक का मसौदा बनाते समय आवश्यक हों और उन निर्णयों के परिणामस्वरूप हों। लेकिन श्रीमान, विधेयक का मसौदा बनाते समय उन्होंने केवल मसौदा-समिति के अधिकारों का ही प्रयोग नहीं किया, वरन् सिलेक्ट कमेटी के अधिकारों का भी प्रयोग किया है—केवल यही नहीं, इससे भी कुछ और अधिक, अर्थात् विधान-परिषद् के अधिकारों का भी उन्होंने प्रयोग किया है। उन्होंने कुछ ऐसे परिवर्तन किये हैं, जिनका उन्हें अधिकार न था। विधान में ऐसे नवीन परिवर्तन करने के बारे में पहले भी संकेत किया गया है। जिन परिवर्तनों का उनको अधिकार न था और जिन प्रश्नों पर विधान-परिषद् ने न तो कुछ विचार किया था और न कोई निर्णय। कुछ परिवर्तन तो उन्होंने स्वयं किये हैं और इस बात को वे रिपोर्ट में स्वीकार करते हैं, तथा इन परिवर्तनों पर उन्होंने चिह्न लगा दिये हैं और उन्होंने नई बातों का भी समावेश किया है। सभा द्वारा अथवा माननीय प्रधान द्वारा तीन समितियां नियुक्त की गयी थी; सरकार-समिति, केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्र सम्बन्धी समिति तथा अल्पसंख्यक समिति। मैं यहां यह कह दूं कि न तो हमने उनकी रिपोर्टों पर विचार किया और न परिषद् ने उन पर कोई निर्णय किया, पर फिर भी उनकी सिफारिशों में ऐसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर दिये गये हैं जो कि समिति की सिफारिश तथा निर्देश पदों के अनुसार नहीं है, वरन् कहीं-कहीं तो समिति की सिफारिश से भी आगे बढ़ गये। और मैं इस बारे में सभा का ध्यान उस सरकार-समिति की सिफारिशों

[श्री विश्वनाथ दास]

की ओर आकर्षित कर देना पर्याप्त समझता हूं, जो बड़े महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के सम्बन्ध में थी अर्थात् केन्द्र तथा प्रांतों में परस्पर तथा प्रांतों में परस्पर आर्थिक सम्बन्ध। मैं यह स्पष्ट कहूंगा कि मसौदा-समिति का यह अधिकार-क्षेत्र नहीं था और जो कुछ किया गया है, वह इस सभा के अधिकार तथा सत्ता दिये बिना किया गया है।

इसी प्रकार परिषद् के बिना किसी निर्णय के विधान में परिवर्तन कर दिया गया है। श्रीमान्, मसौदा-समिति ने स्वयं जो निर्णय किये, उनके सम्बन्ध में इतना कहने के पश्चात् मैं विधान के मसौदे के प्रश्न को लेता हूं।

श्रीमान्, विधान के मसौदे पर वाद-विवाद करने के लिये माननीय अध्यक्ष ने जो कार्य पद्धति अंगीकार की है, वह अनोखी है। न तो वह विधेयक सम्बन्धी कार्य पद्धति है और न वह ऐसी पद्धति है, जिसका अनुसरण अन्य विधान-परिषदों ने किया हो। हमने 10 अगस्त सन् 1947 ई. को मसौदा-समिति बनाई। छः मास के परिश्रम के पश्चात् इस सभा के माननीय सदस्यों के समक्ष उसकी रिपोर्ट रखी गई। रिपोर्ट फरवरी सन् 1948 ई. के मध्य में घुमाई गई और समिति के समक्ष अपने विचार रखने के लिये माननीय सदस्यों को बहुत कम समय दिया गया। मुझे यह स्पष्ट स्वीकार करना पड़ेगा कि हमें केवल कम समय ही नहीं दिया गया, बल्कि सुझाव देने को जो काल रखा था, वह इस कारण बहुत ही अनुपयुक्त था कि दोनों केन्द्रीय तथा प्रांतीय विधान-मण्डलों के सदस्य अपने-अपने आय-व्यय पत्र के विचार में लगे हुए थे। अतः इतने महत्त्वपूर्ण विषय पर जितना ध्यान देना आवश्यक था और जितना ध्यान देना चाहिये था, वह नहीं दिया गया और इसमें सदस्यों का कोई दोष नहीं है। इस प्रकार जितनी सहायता मसौदा-समिति को मिलनी चाहिये थी; अथवा मिली है, वह बहुत कम और अपर्याप्त है। सुझाव देने के लिये हमें जो समय दिया गया था, उसके सम्बन्ध में इतना कहने के पश्चात् मैं दूसरे प्रश्न को लेता हूं, जो श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने उपस्थित किया है।

मसौदा-समिति के विचार-विमर्शों में समिति के समस्त सदस्यों ने भाग नहीं लिया। मैं तो यहां तक विश्वास करता हूं कि सदस्यों के बहुमत ने भी अपना संयुक्त विचार प्रकट नहीं किया है। अतः मसौदा-समिति का निर्णय थोड़े से माननीय सदस्यों का निर्णय रह जाता है। वे अपने कार्य में बड़े निपुण हो सकते हैं, परन्तु हम इस विषय पर अधिक मानसिक शक्तियां, अधिक विचार तथा अधिक

विचार-विमर्श चाहते थे। और मैं दावा करता हूं कि जो कुछ हुआ, वह पर्याप्त न था। एक वर्ष व्यतीत हो गया और कुछ ज्यादा काम नहीं हुआ। इस काल में बहुत काम हो सकता था और यदि हुआ होता तो परामर्श करने की या सदस्यों से सहायता लेने की अथवा विधान-परिषद् के सदस्यों के विचारों को मसौदा-समिति के समक्ष रखने की कोई भी शिकायत आज नहीं हो सकती थी। यह खेदजनक विषय है कि आज भी हमारे सामने अनेकों विधायकों के विचार विमर्श तथा निर्णय उपस्थित नहीं हैं हम यहां इस बात का दावा करते हैं कि हम प्रांतों के प्रतिनिधि हैं और जानते हम यह भी नहीं कि प्रांतों ने क्या निर्णय किया है, तथा प्रांतों के क्या विचार हैं। यदि हम उनको जान लें, तो हमें अपने निर्णय करने में वे सचमुच ही अच्छे पथ-प्रदर्शक हो सकते हैं। मुझे यह आशा करने दीजिये कि विधेयक पर वाद-विवाद करने के पूर्व हमारे समक्ष उन प्रान्तीय विधायकों के विचार-विमर्श तथा निर्णय रखे जायेंगे, जो इस विधान-परिषद् में प्रतिनिधि के रूप में हैं।

अपने इस विरोध को भी यहां रख देना मैं ठीक समझता हूं कि इतने महत्त्वपूर्ण विधेयक का एक प्रकार की सिलेक्ट कमेटी द्वारा सूक्ष्म परीक्षण नहीं हुआ और खास तौर पर यह बात खटकती है जबकि हम इस बात को ध्यान में रखते हैं कि समस्त भारत से प्रतिनिधान हुआ तथा विभिन्न प्रान्तीय व्यवस्थापकों ने भी अपने विचार प्रकट किये। यदि ऐसा अवसर दिया जाता, तो उसका स्वागत होता। यदि सन् 1948 ई. के मई मास में विधान-परिषद् का अधिवेशन होता और यदि एक सप्ताह की बैठक होती और विचार-विमर्श होता, तो इस विषय को एक समिति के सुपुर्द कर दिया जाता जो सिलेक्ट कमेटी का स्थान ग्रहण कर लेती और भिन्न-भिन्न संस्थाओं के विचारों पर सोचकर अब तक वह समिति विभिन्न धाराओं का पूर्ण परीक्षण कर लेती। मैं महसूस करता हूं कि मसौदा-समिति के सदस्यों ने उचित रूप से परीक्षण नहीं किया है, न इस सभा ने सम्पूर्ण प्रश्न पर विचार-विमर्श करने के लिये आवश्यक समय दिया है और न सदस्यों को उचित तथा पूर्ण रूप से अपने विचार सिलेक्ट कमेटी या इस सभा के समक्ष रखने का ही अवसर दिया है। मैं फिर यह कहूंगा कि एक ही स्थान में 9 या 10 अप्रैल सन् 1948 ई. को चार समितियों की बैठक हुई—मसौदा-समिति, संघाधिकार-समिति, संघ-समिति तथा प्रांतीय विधान-समिति की संयुक्त बैठक। मैं यह स्पष्ट कहूंगा कि जो निर्णय किये गये, उनको मसौदा-समिति ने स्वीकार नहीं किया। मैं यह पूछ

[श्री विश्वनाथ दास]

सकता हूं कि क्या यह मसौदा-समिति है या सिलेक्ट कमेटी है या सर्वशक्तियुक्त विधान-परिषद्? यह मेरे लिए नहीं, नहीं मेरे लिए नहीं, वरन् सभा के माननीय सदस्यों के निर्णय करने की बात है। इन परिस्थितियों में इस कार्य से मैं किंचित् मात्र भी प्रसन्न नहीं हूं।

अपना स्थान ग्रहण करने के पूर्व मैं एक और विषय पर विचार प्रकट करूंगा। मैं विशेषतया मौलिक अधिकारों का उल्लेख करता हूं। मौलिक अधिकारों में विशेषकर धारा 7 में यह दिया हुआ है कि कोई भी अधिनियम जो मौलिक अधिकारों से प्रतिकूल हो, तो उसको अमान्य कर दिया जायेगा और वही अनुच्छेद शब्द के अर्थ में कानून अध्यादेश नियम, अधिनियम तथा ऐसी ही समान बातों को भी शामिल कर देती है। इसका यह अर्थ होगा कि समस्त वर्तमान कानून, प्रान्तीय, केन्द्रीय अथवा पार्लियामेंट के भी कानून, जो आजकल लागू हैं, अधिनियम तथा अनेकों संहितायें मौलिक अधिकारों के न्याय भाग के परिवर्तन होने पर हटा दिए जायेंगे। मैं अपने माननीय मित्र डा. अम्बेडकर से पूछता हूं कि क्या उन्होंने इन मौलिक अधिकारों से वर्तमान केन्द्रीय तथा प्रान्तीय कानूनों में जो उलझनें पैदा होंगी और उन पर जो प्रभाव पड़ेगा, उन पर पूर्णतया विचार कर लिया है? मेरा विश्वास है कि इस काम को या तो विधान-परिषद् के कार्यालय पर छोड़ दिया है या केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों पर कि वे इन कानूनों की उलझनों तथा उन पर पड़ने वाले प्रभाव पर विचार करें। ब्रिटिश सरकार किसी विधान के अधिनियम को स्वीकार करने के पूर्व इस बात की परीक्षा करती थी कि इसका वर्तमान कानून पर क्या प्रभाव पड़ेगा और इस बात की संतोषजनक परीक्षा करने के बाद तीन भिन्न स्थितियों की व्यवस्था करती थी। पहली स्थिति की व्यवस्था स्वयं एक्ट में की जाती थी और वह होती थी यह कि वर्तमान कानून लागू रहेगा। दूसरी स्थिति की व्यवस्था होती थी यह कि वर्तमान एक्टों में परिवर्तन करने की आज्ञा अधिकारियों को दे दी जाती थी और तीसरी स्थिति वह होती थी, जब परिषत्स्थ आदेश निकाले जा सकते थे। इस विधान-निर्माण में इस प्रकार का कोई भी प्रयत्न नहीं किया गया है और न वर्तमान कानूनों पर जो प्रभाव पड़ेगा, उसकी जांच ही की गई है। अप्रैल सन् 1947 ई. में इसके विरोध में विचार प्रकट करने का कार्य मैंने

किया था। मैंने कहा था कि देश के लिये यह अनुचित होगा और इससे गड़बड़ तथा जनता को कष्ट होने की सम्भावना है। जांच करने का वायदा किया गया था और मैं यह कहूंगा कि वह जांच अभी तक नहीं की गई है। कम से कम मुझे तो यही मालूम हुआ है। इसकी जांच सच्चाई से करनी चाहिए। मैं आशा करता हूं कि मेरे भाषण से यह सिद्ध हो गया होगा कि आवश्यक विचार-विमर्श अभी तक नहीं हो सका है।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान् उपाध्यक्ष महोदय, सर्वप्रथम मुझे मसौदा-समिति को बधाई देनी चाहिये, जिसने एक बड़े परिश्रम का कार्य पूरा किया तथा विधान के बिल को यह रूप और आकार दिया, जिस पर आज हम विचार कर रहे हैं और जिसमें हमें अपनी इच्छानुसार परिवर्तन करना है, जिससे कि ठीक-ठीक सर्वमान्य विधान भारत के लिए बन जाये। डा. अम्बेडकर और उनके साथियों को बधाई देने के साथ-साथ मुझे आपके सलाहकारों को भी बधाई देनी है, वे भी बधाई के योग्य हैं हमारे महान वैधानिक सलाहकार श्रीयुत नरसिंगा राउ ने मसौदा-समिति तथा अन्य समितियों को विधान के कार्य को पूरा करने में बड़ी सहायता दी है। हम अपने मित्र श्री नरसिंगा राउ के प्रति इस बात के लिए भी ऋणी हैं कि उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ में हमारी अंतर्राष्ट्रीय स्थिति को ऊंचा उठाया। जबकि हम अभी उपनिवेश के रूप में हैं और जब कि मैं सदैव यही सोचता हूं कि हम अभी इंग्लैंड के दास हैं, मेरे मित्र वहां गये, हमारी स्थिति तथा हमारे गौरव को ऊंचा उठाया और पश्चिम को यह बता दिया कि भारत संसार को सुखमय तथा शांतिमय बनाने में सहायता कर सकता है।

श्रीमान्, इस विधान-विधेयक के कुछ प्रारूपित अनुच्छेदों से मैं सहमत हूं। इस थोड़े से समय में मैं उन सब बातों को नहीं ले सकूंगा, जिनसे मैं सहमत हूं। मैं उन्हीं बातों को यहां रखूंगा, जिनके सम्बन्ध में विधान के मसौदे से मेरा मतभेद हैं और जिनके बारे में इस सभा को विचार-विमर्श करना चाहिए और जिनके बारे में सभा को इस मसौदे को इतना बदल देना चाहिये कि यह संविधान सचमुच भारतीयों का ही लगे और अंग्रेजों की पुरानी परम्पराओं और भूतकालीन सम्बन्धों पर आधृत प्रतीत न हो।

[श्री बी. दास]

श्रीमान्, अब मैं प्रस्तावना के नये मसौदे को लूंगा, जिस पर मुझे भारी आपत्ति है। लक्ष्य-संबंधी प्रस्ताव जिसको हमने जनवरी सन् 1947 ई. में स्वीकार किया था, उसमें उल्लिखित था कि विधान, ''स्वतंत्र-सर्वसत्ताधारी-गणराज्य'' के लिये है। 21 फरवरी सन् 1948 ई. में मेरे मित्र डा. अम्बेडकर ने उस पद को ''सर्वसत्ताधारी प्रजातंत्रात्मक गणराज्य'' किया, पर ता. 26 अक्टूबर सन् 1948 ई. के एक दूसरे नोट से उसे ''सर्वसत्ताधारी प्रजातंत्रात्मक राज्य'' में परिवर्तन कर दिया। मैं नहीं समझ पाता कि मसौदा-समिति लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव में, जिसको सभा ने जनवरी सन् 1947 ई. में स्वीकार कर लिया था, किस प्रकार परिवर्तन कर सकती है? हमने सर्वसम्मति से यह निश्चय किया था कि प्रस्तावना में ''स्वतंत्र सर्वसत्ताधारी गणराज्य'' पद होना चाहिये और मैं उनमें से हूं जो कि प्रस्तावना के संशोधित मसौदे का घोर विरोध करेंगे।

कुछ ऐसे भी विषय हैं, जिन पर सभा ने अपना मत कभी भी प्रकट नहीं किया। वे विवादास्पद थे। उनको अनिश्चित छोड़ दिया गया था, फिर भी मसौदा-समिति ने अनुच्छेद 5 में जिस संशोधन का सुझाव दिया है, मैं उसका स्वागत करता हूं। उसमें और अधिक सुधार होना चाहिये। मैं ''नागरिकता'' की व्याख्या का उल्लेख कर रहा हूं। मसौदा-समिति को अपने पहले मसौदे में हिचकिचाहट थी, परन्तु दूसरे संशोधन में उन्होंने उससे अच्छा मसौदा दिया है। उसमें और भी सुधार की आवश्यकता है।

मौलिक अधिकारों में ऐसे दो या तीन प्रश्न थे, जिन पर सभा किसी निर्णय तक नहीं पहुंच सकी थी। मुझे पूर्ण आशा है कि मसौदा-समिति की सिफारिशों को स्वीकार न करते हुए हमको इन प्रश्नों पर वाद-विवाद करने के लिये यथेष्ट समय दिया जायेगा। एक बात जिस पर मैं बहुत खुश हूं, वह यह है कि भारत की नारियों ने वह पद प्राप्त किया है, जिसका किसी अन्य स्वतंत्र राष्ट्र की नारियों ने उपभोग नहीं किया। उनको पुरुषों के समान अधिकार, समान विशेषाधिकार और समान अवसर प्राप्त हो गये हैं और हमारे नागरिकों के मौलिक अधिकारों में यह एक महान बात है।

श्रीमान्, मैं मनोनीत गवर्नरों के विचार का घोर विरोध करता हूं। मैं नहीं समझ पाता कि उन लोगों के विचार को, जिनके सहयोगी मेरे मित्र डा. अम्बेडकर भी

हैं, (अर्थात् सरकार का) इस विधान के विधेयक के मसौदा बनाने में क्यों महत्त्व दिया जाता है। कभी भी हमें यह अनुभव नहीं हुआ कि हमारे मंत्रिमंडल के किसी भी प्रतिनिधि ने ऐसा विचार प्रकट किया हो। गवर्नर का चुनाव प्रांतीय परिषदों द्वारा होना चाहिये और प्रान्तीय परिषदों की प्रान्त के निवासियों पर गवर्नर पद के चुनाव लड़ने में कोई प्रतिबंध लगाने की आवश्यकता नहीं है। हम सरकार को अपना अधिकार देना नहीं चाहते हैं, चाहे वह प्रधान हो चाहे कोई और कुशल प्रशासक और इनमें मैं डा. अम्बेडकर को भी गिना सकता हूं। हम गवर्नर पद या मंत्री पद को कुछ व्यक्तियों तथा उनके परिचितों में सीमित करना नहीं चाहते हैं।

मेरी सबसे बड़ी आपत्ति और ऐसी आपत्ति कि जिससे टकराकर समस्त विधान टूट जायेगा वह प्रान्तों तथा केन्द्रों के मध्य आर्थिक विभाजन के सम्बन्ध में है। मुझे आश्चर्य होता है कि मेरे मित्र डा. अम्ब्डेकर जैसे वीर पुरुष प्रान्तों की आर्थिक व्यवस्था पर विचार-विमर्श करना टाल रहे हैं और पवित्र भाव से सिफारिश करते हैं कि इस विधान के लागू होने से पांच वर्ष तक हमें आर्थिक विभाजन में उलट-फेर नहीं करना चाहिये। मेरे लिये तो यह बात वास्तव में आश्चर्यजनक, बड़ी ही आश्चर्यजनक है। यह तो वैसा ही दृष्टिकोण है जैसाकि औपनिवेशिक सरकार हमारी पूर्ववर्ती सरकार ने तथा उस सरकार के समर्थकों ने सन् 1935 में अपनाया था। विदेशी शासक बहुत कठोर केन्द्रीय शासन व्यवस्था चाहते थे और उन्होंने प्रान्तों को भूखा मार डाला। आज मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मसौदा-समिति के दिमाग में भी वही चीज है। मैं वास्तव में अपने मित्र श्री कामत से सहमत हूं कि मसौदा-समिति में कांग्रेसी विचारधारा के और अधिक सदस्य होने चाहिये थे, जिससे कि वे उन लोगों के सिद्धान्त तथा विचारों का प्रतिनिधान करते, जिनके फलस्वरूप यह विधान-परिषद् बनी और जिनकी आकांक्षायें इस मसौदे में प्रतिबिम्बित होनी चाहिये।

मैं श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के जोरदार भाषण के लिये उनका कृतज्ञ हूं। मैंने देखा कि जनता के स्वास्थ्य पर समस्त प्रान्तों में समस्त व्यय का 31 से लेकर 58 प्रतिशत तक ही व्यय किया गया है। यह बात युद्ध से पूर्व 1935 ई. से 1938 ई. तक की है। यही युद्ध के पश्चात् सन् 1947-48 ई. में हुआ। मुद्रास्फीति के कारण समस्त प्रान्तों तथा केन्द्र में व्यय तिगुना बढ़ गया है। यह प्रश्न है, जिसकी प्रत्येक प्रान्त को परीक्षा करनी चाहिये और इस पर ध्यान देना चाहिये।

[श्री बी. दास]

उड़ीसा और आसाम जैसे प्रान्त डा. अम्बेडकर के ऐसे भाषण के परिणाम की जांच करेंगे। हम आर्थिक विभाजन को फिर से चाहते हैं, जिससे कि प्रान्तों को प्रस्तावना के दूसरे वाक्य ''न्याय सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक'' को पूर्ण करने के साधन प्राप्त हो सकें।

श्रीमान्, मैं राजनैतिक न्याय की चिंता नहीं करता हूं। मैं जनता के लिये इस सभा से सामाजिक और आर्थिक न्याय चाहता हूं। और यदि माननीय मंत्री इसका विरोध करेंगे, तो हमें इस सभा के बहुमत को स्वीकार करने के लिये उन्हें विवश करेंगे और प्रान्तीय शासन-व्यवस्था के अंतर्गत करोड़ों मनुष्यों का सामाजिक तथा आर्थिक न्याय करेंगे।

***श्री लोकनाथ मिश्रा** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, उपाध्यक्ष महोदय, मैं इस महान् सभा में नया सदस्य हूं और यहां की कार्यवाही में मैंने कभी पहले भाग नहीं लिया है। अत: यदि मैं सुसम्बद्ध भाषण न दे सकूं, तो मैं माननीय सदस्यों से क्षमा चाहूंगा। साथ ही साथ मेरे ऊपर उन लोगों का भार है, जिन्होंने मुझे यहां भेजा है कि मैं उनकी ओर से इस विषय पर उनके विचारों को, जैसा मैं समझता हूं, प्रकट करूं।

श्रीमान, यह विधान-परिषद्, जो भारत की प्रभुता की प्रतीक है और जो कि हमारी स्वतंत्रता को रूप, आकार और प्रतिष्ठा देने के लिये है, यहां पर उस विधान पर विचार-विमर्श कर रही है, जो कि हमारे भविष्य का संरक्षक है। इस लक्ष्य को दृष्टिगत रखते हुए हमारे नेताओं ने घोर परिश्रम किया है और विधान का मसौदा बनाया है, जिस पर हम अब वाद-विवाद करने जा रहे हैं। परन्तु इस मसौदे पर जितनी मसौदा-समिति को बधाइयां मिल चुकी हैं, उतनी बधाई मैं नहीं दे सकता हूं।

श्रीमान, मेरा प्रथम प्रश्न यह है कि यद्यपि डा. अम्बेडकर ने विधान के मसौदे का विश्लेषण करते हुये बड़ा सुन्दर, प्रकाशमय, ओजपूर्ण तथा स्पष्ट भाषण दिया—यहां मैं यह कह दूं कि यदि यह भाषण न होता, तो मैं मसौदे में इतने दोष नहीं निकाल सकता था—पर मैं यह कहूंगा कि मसौदे में वह लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव नहीं है, जिसे इस सर्वसत्ताधारी सभा ने विगत वर्ष स्वीकार किया था। जहां तक मुझे उसे अध्ययन करने का अवसर मिला और जहां तक मुझे इस समय याद है, उसके आधार पर मैं यह बात कह सकता हूं कि लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव हमारे परिश्रम का इतना सुन्दर फल था कि वह भारत के हृदय और आत्मा

का प्रतिनिधान क्षण भर के लिये नहीं, वरन् युगयुगान्तर के लिये कर सकता था। वह लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव क्या था? वह लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव एक ऐसे संघीय विधान का विचार निहित था, जिसमें प्रान्तों को अवशिष्ट अधिकार प्राप्त होंगे और केन्द्र को केवल उतने ही अधिकार होंगे, जितने अधिकारों की उसे प्रान्तों में समान व्यवस्था करने के लिये आवश्यकता हो। परन्तु यह विधान का मसौदा, चाहे संघात्मक नाम से पुकारें या एकतंत्रात्मक नाम से, परिषदात्मक नाम से या अध्यक्षात्मक नाम से, संघात्मक राज्य की अपेक्षा एक शक्तिशाली एकात्मक राज्य की अधिक जड़ जमा रहा है। जब मैं यह कहता हूं कि यह एकात्मक है तो मेरा आशय यही है कि प्रान्तों को अधिकार देने की अपेक्षा केन्द्र को कपट से बहुत अधिकार दे दिये गये हैं। डा. अम्बेडकर ने चाहे जो कुछ कहा हो और हमारे गांवों से घृणा करने वाले अपने जैसे व्यक्ति को अधिकार देने के लिये उन्होंने चाहे जो कुछ सोचा हो, मैं यह कहूंगा कि यह विधान व्यक्ति को, कुटुम्ब को, ग्राम को, जिले को और प्रान्त को कुछ भी अधिकार नहीं देता है। डा. अम्बेडकर ने तो प्रत्येक अधिकार केन्द्र को दिया है।

केन्द्र क्या है? शक्ति के इस केन्द्रीकरण से न मालूम भविष्य में क्या होगा? परन्तु अपने वर्तमान अनुभव के आधार पर मैं यह कहूंगा कि हमारी वर्तमान सरकार का इतना केन्द्रीकरण हो गया है और हमारे अधिकारीवर्ग अधिकारों के इतने भूखे हैं कि यदि देश सजग न रहे और जनता अधिक जागरूक न हो, तो यह पूरी आशंका है कि न्याय, व्यवस्था, शांति और एकता के नाम पर वे आसानी से पथ भ्रष्ट हो सकते हैं। इसलिये मैं कहूंगा कि भारत का चाहे जो कुछ भविष्य हो, हमें सदैव के लिये यह समझ लेना चाहिये और मनुष्यों को सदैव के लिये यह समझ लेना और अनुभव कर लेना चाहिये कि हम किस आदर्श के लिये इस विधान को रख रहे हैं और इसके अधीन हम कितनी स्वतंत्रता प्राप्त करेंगे।

श्रीमान्, मैं एक प्रश्न करना चाहता हूं। हम एक शक्तिशाली केन्द्र चाहते हैं, परन्तु किसलिये? कुछ लोग कहते हैं कि दिन-प्रति-दिन प्रान्तीयता बढ़ती चली जा रही है और संघर्ष होने की सम्भावना है। अतः प्रारम्भ में हमें केन्द्र को इतना शक्तिशाली बना देना चाहिये कि वह अजेय हो। परन्तु इसका आशय यह नहीं है कि हम युद्धवादी बन जाये। हम एक शक्तिशाली केन्द्र चाहते हैं। किसके विरुद्ध? पाकिस्तान के विरुद्ध, रूस के विरुद्ध या स्वयं भारतवासियों के विरुद्ध? मुझे पूरा

[श्री लोकनाथ मिश्रा]

विश्वास है कि यदि हम भावी भारत का निर्माण भारत के भूतकाल के सुदृढ़ आधार पर करें—और यह आधार तो भारत की आत्मा अथवा आंतरिक दृष्टि अथवा आत्म-दर्शन के दृष्टिकोण के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं; और यदि हम भौतिक उद्देश्यों को दृष्टि में न रखकर भारत की अमर आत्मा की बात को ही सोचे और उसी की बातों को शब्द दें, तो मुझे पूरा विश्वास है कि हम पूर्णरूपेण अखण्ड, पूर्णतया शक्तिशाली और जगत के लिये आदर्श, सम, भारत का निर्माण करने में सफल होंगे। परन्तु यदि अध्यक्ष को, मंत्रियों को या अल्पजनसत्तात्मक केन्द्रीय मंत्रिमंडल को इतने अधिकार देकर हम भारत को संगठित करना चाहते हैं, तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि या तो भारत छिन्न-भिन्न हो जायेगा या वह हमारे और सब के लिये एक अन्य संकट का कारण हो जायेगा।

यह कहा गया है कि अमरीका के संयुक्त राष्ट्र का संघात्मक विधान है, परन्तु वह धीरे-धीरे एकात्मक विधान बनता चला जा रहा है; अतः वह अच्छा होता चला जा रहा है। यह भी कहा गया है कि जैसे-जैसे समय व्यतीत होता चला जायेगा, केन्द्र अधिकाधिक अधिकार प्राप्त करता चला जायेगा और प्रान्त तथा इकाइयां अधिकार छोड़ती चली जायेंगी। यह युद्धवाद की प्रवृति है, अथवा घबराहट में की हुई शांति की। हम यह देंखे कि संयुक्त राष्ट्र सरकार (अमरीका) ने किस प्रयोजन के लिये अधिक अधिकार ग्रहण किये? प्रयोजन यही हो सकता है कि वे रूस अथवा किसी अन्य देश के विरुद्ध अधिक शक्तिशाली हो जाये। जिसका आशय है, बाह्य शक्तियों के विरुद्ध शक्ति-संचय। मैं यह कहूंगा कि राष्ट्र की शक्ति और जनता का संगठन राज्य की शक्ति पर निर्भर नहीं हैं वह आन्तरिक संगठन और उस मानवी प्रवृति पर निर्भर है, जो समस्त मानवों को भ्रातृरूप देती है। इस कारण यदि प्रस्तावना के शब्दों ''समानता, न्याय और शांति'' का अर्थ केवल हमारे शक्तिशाली केन्द्र रखने में ही है; तब तो जितने शीघ्र हम इस भ्रम से मुक्त हो जाये उतना ही अच्छा है। मैं अधिक शक्तिशाली केन्द्र के पूर्णतया विरुद्ध हूं और वह इस कारण से कि यद्यपि उस हालत में सरकार तानाशाही या अल्पजनसत्तात्मक तो नहीं होगी, तदपि वह इतनी शक्तिशाली हो जायेगी कि प्रान्त

समस्त महत्त्व, समस्त प्रेरणा और समस्त उत्साह खो बैठेंगे। अन्ततः इस कारण व्यक्ति का भी पतन हो जायेगा।

एक माननीय सदस्य ने अभी यह कहा कि हमें शक्तिशाली केन्द्र बनाना चाहिये, परन्तु एक भाषा नहीं रखनी चाहिये। मैं यह कहूंगा कि जब हमारी भाषा एक होगी, तभी केन्द्र शक्तिशाली हो सकेगा। यदि वास्तव में हम भारत में एकता स्थापित करना चाहते हैं, तो हमें एक भाषा रखनी चाहिये। यदि हम प्रान्तीय भाषा का परित्याग करने के लिये उद्यत नहीं हैं, तो हम एकता किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं और मैं समझ नहीं पाता कि किसी सदस्य के मुंह से यह शब्द किस प्रकार निकले कि बिना किसी एक भाषा अपनाये ही हमें एकता स्थापित करनी चाहिये। उनका तात्पर्य सम्भवतः यही है कि बिना ऐसी एक भाषा अपनाये ही, जो एक संस्कृति की द्योतक हो, हमें केन्द्र को शक्तिशाली बनाना चाहिये; किन्तु अखण्ड भारत और शक्तिशाली केन्द्र का यह घोष तो अत्यन्त भयावह है। मैं तो यह नहीं समझता कि शक्तिशाली केन्द्र की खातिर हम ऐसा संघर्ष अपने सिर पर ले लें, जो भविष्य में इसके कारण से पैदा होना बहुत सम्भव है। अब मेरा समय समाप्त हो चुका है। डा. अम्बेडकर के भाषण का सूक्ष्म परीक्षण करने के लिये मैं और अधिक समय लेता। मैं उनके ज्ञान के सामने तो सिर झुकाता हूं। मैं उनकी भाषण-स्पष्टता की तारीफ करता हूं। मैं उनके साहस का आदर करता हूं। परन्तु मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि इतना बड़ा विद्वान, भारत का इतना यशस्त्री पुत्र भारत के बारे में इतना अल्प ज्ञान रखता है। विधान के मसौदे की वह आत्मा है और उसने ही मसौदे में कुछ ऐसी बातें दी हैं, जो अभारतीय हैं। अभारतीय से मेरा आशय यह है कि चाहे वे इस बात का कितना ही खंडन करें, पर हैं वह वास्तव में पश्चिम का दासवत्पूर्ण अनुकरण—नहीं, इतना ही नहीं, वरन् इससे भी अधिक—पश्चिम के समक्ष दासवत् अर्पण।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): श्रीमान्, अध्यक्ष महोदय, भारतीय विधान के मसौदे पर विचार करने वाले प्रस्ताव को रखने के लिये मैं डा. अम्बेडकर को बधाई देता हूं। जो उन्होंने भाषण दिया वह स्मरणीय है और मुझे विश्वास है कि उनका नाम एक महान विधान-निर्माता के रूप में अनेकों पीढ़ियों तक अमर रहेगा।

[काज़ी सैयद करीमुद्दीन]

कल उन्होंने यह कहा था यह विधान संसार भर के विधानों से विशाल है। मेरी सम्मति में यह उसका कोई गुण नहीं है, जब तक कि उसमें सार न हो। इसमें सन्देह नहीं कि हमने अनेकों प्रावधान विदेशी विधानों से लिये हैं। यह विधान न तो परिषदात्मक है और न अपरिषदात्मक और जिस समय इसे प्रयोग में लाया जायेगा, उस समय यह पता चलेगा कि यह ठीक-ठीक काम भी करता है, या नहीं।

श्रीमान्, विधान के कुछ भागों पर मुझे घोर आपत्ति है। डा. अम्बेडकर ने स्वयं यह मान लिया है कि भारत के रियासतों को बने रहने देना ठीक नहीं है और वे इनमें शामिल करते हैं, उन रियासतों या रियासतों के समूह को, जिन्हें कानून बनाने या पृथक विधान-परिषद् बनाने का अधिकार है। मेरी सम्मति में भारतीय कानून में यह एक कलंक है कि इस बीसवीं शताब्दी में भी राजा, राजप्रमुख तथा निज़ामों को तथा उनके वंशों को कायम रहने दिया जाये। इन सब व्यवस्थाओं को मिटा देना चाहिये और प्रत्येक रियासत के लिये एक सा विधान होना चाहिये। इन सब रियासतों अथवा रियासतों के समूहों को या तो प्रान्तों के साथ मिला देना चाहिये, या उनको स्वतंत्र प्रान्त बना देना चाहिये।

श्रीमान्, अल्पसंख्यकों के दृष्टिकोण से सबसे महत्त्वपूर्ण प्रावधान संयुक्त निर्वाचन में स्थानों को सुरक्षित रखने वाला प्रावधान है। पिछली बार विधान-परिषद् ने पृथक निर्वाचन और स्थानों के रक्षण सहित संयुक्त निर्वाचन पर विचार किया था। अल्पसंख्यकों के लिये अब केवल स्थानों के रक्षण सहित संयुक्त निर्वाचन ही है। स्थानों के रक्षण सहित संयुक्त निर्वाचन से अल्पसंख्यकों का कोई लाभ नहीं है। यह उनको अवश्य हानि पहुंचायेगा। स्थानों के रक्षण सहित संयुक्त निर्वाचन में जिस प्रतिनिधि का चुनाव होगा, वह उन अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधि नहीं होगा, जिनको रक्षण दिया गया है। कोई नामधारी धर्मपरिवर्तक या बहुमत प्राप्त दल का किराये का टट्टू भी बहुसंख्यक वर्ग की वोटों द्वारा आ सकता है। अतः मेरा निवेदन यह है कि यह प्रावधान अल्पसंख्यकों के हितों के लिये घातक है। पृथक निर्वाचन या स्थानों के रक्षण सहित ऐसा संयुक्त निर्वाचन, जिसमें उस सम्प्रदाय के वोटों का कुछ प्रतिशत नियत कर दिया गया हो, जिस सम्प्रदाय का वह सदस्य हो,

यदि ये दो प्रस्ताव जो कि पिछली बार अस्वीकार कर दिये गये थे, सभा को मान्य नहीं हैं, तो अल्पसंख्यकों को संयुक्त निर्वाचन के अंतर्गत स्थानों के संरक्षण का परित्याग कर देना चाहिये। श्रीमान्, इससे तो देश में कानून द्वारा स्थानीय अल्पसंख्यक पैदा हो जायेंगे। मुस्लिम सम्प्रदाय तथा अन्य अल्पसंख्यक सम्प्रदाय, जो रक्षण चाहते हैं, उनके लिये यह बहुत हानिकारक और घातक होगा; क्योंकि इस प्रणाली में अल्पसंख्यकों के वास्तविक प्रतिनिधि के चुने जाने के लिये कोई अवसर नहीं है। पृथक चुनावों को रखते हुये भी हम अपने सम्प्रदाय की कोई सेवा नहीं कर सकते हैं। हमने अपने आपको बहुमत की दया पर छोड़ दिया है और यह बहुसंख्यकों का काम है कि वह इस अवसर से लाभ उठाये और इस प्रकार दोनों के लाभ के लिये देश में बहुसंख्यकों तथा अल्पसंख्यकों का परस्पर संगठन हो जाये। 15 अगस्त सन् 1947 ई. के पश्चात् जिस प्रकार जो कुछ हुआ, वह हमने देखा और हम असहाय अलग बैठे रहे। हम संयुक्त निर्वाचन मानने के लिये उद्यत हैं और एक ही टिकट पर अपना चुनाव लड़ेंगे। यह बहुसंख्यकों का काम है कि वह अल्पसंख्यकों में विश्वास पैदा करें और अल्पसंख्यकों का यह काम है कि वे आगे बढ़ें और बहुसंख्यकों के साथ सहयोग करें। अतः मेरा निवेदन यह है कि स्थानों के रक्षण से और भी अधिक द्वेष, ईर्ष्या, साम्प्रदायिक घृणा तथा मुसलमानों में दलबन्दी उत्पन्न होगी। यह प्रावधान मुसलमान सम्प्रदाय के लिये हितकर नहीं है। ऐसे रक्षणों को जो नाममात्र के हैं और प्रभाव शून्य हैं, स्वीकार करने से कोई लाभ नहीं है। यह मेरी सम्मति है। हमें अपने भाग्य के भरोसे छोड़ दिया जाना चाहिये और भविष्य का सामना करने के लिये हम पूर्णतया तैयार हैं। यदि बहुसंख्यक सम्प्रदाय अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा करना चाहता है, तो वह आनुपातिक प्रतिनिधान की प्रणाली को चलाये। राजनैतिक तथा साम्प्रदायिक अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिये यूरोप में केवल बहुसदस्यात्मक निर्वाचन क्षेत्रयुक्त तथा बहुमत अधिकारयुक्त आनुपातिक प्रतिनिधान ही ऐसी प्रजातंत्रात्मक पद्धति है, जिससे उनके हितों की रक्षा की जाती है, प्रजातंत्रात्मक सिद्धांतों का बलिदान किये बिना अल्पसंख्यकों की रक्षा की जा सकती है। एक अन्य प्रकार से अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा की जा सकती है और वह है, इस देश में अपरिषदात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना करना। विधान के मसौदे का परिचय कराते समय डा. अम्बेडकर द्वारा परिषदात्मक शासन व्यवस्था की प्रशंसा सुनकर मुझे सचमुच आश्चर्य हुआ। अपनी पुस्तक ''स्टेट्स एण्ड माइनोरिटीज' में उन्होंने इस पक्ष का समर्थन किया है कि अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिये अपरिषदात्मक शासन व्यवस्था

[काज़ी सैयद करीमुद्दीन]

सबसे अधिक उपयुक्त है और सन् 1947 में जो कुछ उन्होंने लिखा, उसको मैं उन्हें पढ़कर सुनाऊंगा।

''अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिये प्रावधान—

वाक्य खंड 1

(1) कि संघ अथवा राज्य का अधिशासी मण्डल इस अर्थ में अपरिषदात्मक होगा कि वह विधान-मण्डल के निर्धारित काल के पूर्व नहीं हटाया जा सकेगा।

(2) अधिशासी मण्डल के सदस्यों को, यदि वे विधान-मण्डल के सदस्य नहीं हैं, विधान-मण्डल में बोलने, मत देने तथा प्रश्नों के उत्तर देने का अधिकार होगा।

* * *

(3) मंत्रिमंडल में विभिन्न अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों का निर्वाचन विधान-मण्डल में प्रत्येक अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के सदस्यों द्वारा एकल संक्राम्य मत से किया जायेगा।

(5) अधिशासी मण्डल में बहुसंख्यक सम्प्रदाय के प्रतिनिधियों का निर्वाचन समस्त सभा द्वारा एकल संक्राम्य मत से किया जायेगा।

* * *

मेरी सम्मति में अल्पसंख्यकों को संरक्षण देने के लिये यह सबसे सुगम विधि है। भारत में क्या हुआ? सब प्रान्तों में उपद्रव, अग्निकांड और हत्याकर्म हुये और अपने निर्वाचकों से डर कर मंत्रियों को इतना साहस नहीं हुआ कि वे आगे बढ़ते और तुरन्त उन कांडों को रोकते। यदि आप अपरिषदात्मक अधिशासी मण्डल रखें, तो शासन-समिति के सदस्यों को कोई भय नहीं होगा, क्योंकि उनके समर्थकों द्वारा वे हटाये नहीं जा सकेंगे। इसलिये परिषदात्मक शासन-व्यवस्था में सरकार स्वभावतः अशक्त और निर्बल रहेगी, क्योंकि मंत्रियों को अपने पद पर स्थित रहने के लिये सम्प्रदायवादी समर्थकों पर निर्भर रहना पड़ेगा।

श्रीमान्, विधान का चौथा भाग आदेशात्मक मौलिक अधिकारों का है, जो दिये गये हैं मैं डाक्टर साहब से कहना चाहता हूं कि अपनी पुस्तक में उन्होंने यह लिखा है कि ये सब सिद्धान्त और मौलिक अधिकार आज्ञामूलक होने चाहिये। उन्होंने

यह कहा है कि इन प्रावधानों को दस वर्ष में लागू कर देना चाहिये। भाग 4 में जो कुछ कहा गया है, वह अस्पष्ट है। हम देश का वह आर्थिक स्वरूप चाहते हैं, जिसमें गरीब जनता उन्नत हो सके। इस विधान में जो कि बनाया जा रहा है, उसमें उद्योग के राष्ट्रीयकरण की न तो प्रतिज्ञा की गई है और न घोषणा। जमींदारी प्रथा को मिटाने की प्रतिज्ञा नहीं है। यह एक मसौदे के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। स्वतंत्र भारत के विधान के सम्पूर्ण सवाल को टालने के अतिरिक्त इसमें और कुछ नहीं है। स्वतंत्र भारत के विधान में निश्चित आर्थिक स्वरूप का न रखना अत्यन्त दु:खजनक है।

एक बात और कहकर मैं समाप्त करता हूं। प्रस्तावना के नीचे सूचना में यह दिया हुआ है कि हमारे कामनवेल्थ में बने रहने या न बने रहने के प्रश्न पर अभी कुछ भी निश्चित नहीं किया गया है। मुझे बड़े खेद के साथ यह बताना पड़ता है कि जब लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव पेश किया गया था, संसार में तथा भारत में यह घोषित कर दिया गया था कि भारत एक स्वतंत्र स्वाधीन राज्य होगा। यह अनिश्चितता क्यों है? किसकी प्रेरणा से यह किया गया है, जब कि भारत की सर्वसत्ताधारी संविधान-परिषद् के प्रस्ताव द्वारा यह घोषणा की जा चुकी है कि भारत स्वाधीन रहेगा। मैं नहीं समझ पाता कि इस स्थिति को किस प्रकार ग्रहण किया गया, किसके अधिकार तथा किसी सम्मति से यह किया गया। मेरा निवेदन यह है कि डा. अम्बेडकर इस गलत कदम उठाने में अपने अधिकारों से परे चले गये। हम उन दु:खजनक घटनाओं को नहीं भूले हैं, जो भारत में हुई। हम जलियांवाला की दु:खद घटना को नहीं भूले हैं। भारतवासियों के विरुद्ध दक्षिणी अफ्रीका की संघ-सरकार के पक्ष को, ब्रिटिश साम्राज्यशाही द्वारा समर्थन को हम नहीं भूले हैं; आस्ट्रेलिया में जातीय नीति को हम नहीं भूले हैं। इस प्रकार का संसर्ग हमें दक्षिणी अफ्रीका के फासिज़्म और आस्ट्रेलिया के जातीयगत भेद-विभेद का साथी बना देता है और इसके मानने से हमारी तटस्थता की विदेशी नीति पूर्णतया असफल हो जायेगी। इन सब बातों पर विचार करते हुये मेरा यह निश्चित मत है कि कामनवेल्थ के बाहर रहने के अतिरिक्त हमारे लिये अन्य कोई मार्ग नहीं है। सन् 1929 ई. में लाहौर में पं. जवाहरलाल नेहरू ने यह घोषणा की थी कि ब्रिटिश साम्राज्यशाही और उससे सम्बन्धित समस्त बातों का जब तक परित्याग नहीं किया जाता, तब तक भारत कामनवेल्थ का सदस्य नहीं हो सकता। मुझे खेद है, मेरा समय समाप्त हो गया।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मसौदा-समिति और उसके सभापति को विस्तृत विधान के मसौदे के लिये, जो उन्होंने इस सभा के समक्ष रखा है, बधाई देने में मैं सभी के साथ सम्मिलित हूं। मुझे कानून मंत्री को विशेषकर बधाई देनी है कि उन्होंने इतने स्पष्ट रूप से विधान की मुख्य बातों को हमारे सामने रखा है और हमें कारणों सहित विचारोत्पादक बातें बताई हैं कि कुछ विषयों का क्यों समावेश किया गया है और कुछ को इस रूप में क्यों रखा गया है।

मैं यह निवेदन करने का साहस करता हूं कि मेरी बधाइयां और भी अधिक वास्तविक हैं, क्योंकि मैं बहुत सी प्रमुख बातों के बारे में, जो इस विधान के मसौदे में दी हुई हैं, मेरे विचार इनसे भिन्न हैं। श्रीमान्, मैं सभा का ध्यान इस बात पर विचार करने के लिये आकर्षित करूंगा कि सर्वप्रथम वे सिद्धांत, जिन पर यह विधान आश्रित है, इस मसौदे के बनाने के निर्देश उस समय तैयार किये गये थे और दिये गये थे, जब यह देश घोर संकटावस्था में ग्रस्त था और जिस दशा के बारे में हममें से बहुतों को दु:ख है। हमारे मन खिचे हुये थे, हमारे विचार कुछ घटनाओं में ग्रस्त थे और मैं यह कह सकता हूं कि इन कारणों से, जैसा कि होना चाहिये, भावी भारत की हमारी कल्पना कुरूप हो गई थी। उन घटनाओं के प्रभाव के अंतर्गत ऐसे निर्देश दिये गये और ऐसे सिद्धांत स्थिर किये गये, जिन पर गम्भीर विचार के पश्चात् मैं यह समझता हूं कि उनके परिवर्तन करने के लिये हमारे पास यथेष्ट कारण हैं। ठीक समय आने पर मैं विधान के कुछ प्रावधानों में संशोधन करने के सुझावों को उपस्थित करूंगा और उनके लिये इस समय में सभा का समय नहीं लूंगा। इस समय मैं कुछ सामान्य विचार सभा के समक्ष रखूंगा, जिन पर पुन: विचार करने की आवश्यकता है। सर्वप्रथम स्वयं डा. अम्बेडकर के शब्दों में मैं यह पूछता हूं कि इस विधान के उद्देश्य क्या हैं? यह विधान क्या करेगा? जैसा कि डा. अम्बेडकर ने बताया है, अथवा जैसा कि विधान के शब्दों द्वारा विदित किया जा सकता है, इस विधान का उद्देश्य लगभग पूर्णतया राजनैतिक है। सामाजिक तथा आर्थिक तो है ही नहीं। मुझे आशा है कि कोई यह न सोचेगा कि मैं सनक के कारण यह कहता हूं कि सामाजिक न्याय प्राप्त कराने के लिये, जो मनुष्यों के लिये सच्ची समानता है—केवल पत्र लिखित समानता नहीं, वरन् दैनिक जीवन तथा अनुभव में आने वाली वास्तविक अर्थयुक्त समानता, जिसका हमें वचन दिया गया था और जिसकी हम सबको साम्राज्यवादी शोषक के

निकल जाने के परिणामस्वरूप मिलने की आशा थी, वह इस विधान में लेशमात्र भी नहीं पाई जाती है। जैसे ही मैंने दो या तीन मुख्य-मुख्य परिच्छेदों या अनुच्छेदों को पढ़ा, मैंने यह पाया कि मानवता के पैतृक-अधिकारों और स्वत्त्वों से वंचित व्यक्तियों के लिये, तथा उन व्यक्तियों के लिये, जिनको इस देश में सभ्यतापूर्वक जीवित रहने के न्यूनतम साधन भी उपलब्ध नहीं हैं, इस विधान में किसी प्रकार की भी सहानुभूति नहीं दिखाई देती। उदाहरणार्थ मौलिक अधिकारों के परिच्छेद को लीजिए। हमसे कहा गया था कि मौलिक अधिकारों का अनेकों अपवादों द्वारा परिवर्द्धन तथा उनमें संशोधन कर दिया गया है और ये अपवाद अधिकारों का हरण नहीं करते हैं। मैं उन लोगों में से हूं, जो यह अनुभव करते हैं कि अपवादों की संख्या बहुत अधिक है। जैसा कि मैंने पहले कहा था कि हमने विधान का मसौदा बनाने के लिये उस समय निर्देश दिये, तथा उसके सिद्धांत उस समय स्थिर किये थे, जिस समय तनाव था और हमारी बुद्धि अत्यन्त विचलित थी। और इसलिये साधारणतया मामूली, शान्तिमय तथा नियमानुसार चलने वाले सामाजिक जीवन की अपेक्षा हमने संकटकाल की हालतों को ही अधिकतर अपनी दृष्टि में उस समय रखा था।

मौलिक अधिकारों की बहुत-सी बातों में, जिन पर बाद में विवरण-सहित विचार किया जायेगा, मैं आशा करता हूं कि उस समय मुझे संशोधन पेश करने और ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय पर मसौदे में भूल अथवा बक्रार्थ को सुधारने के लिये अवसर दिया जायेगा।

लेकिन उसका एक अंग ऐसा है, जिसको मैं इसी समय सभा के समक्ष रखना चाहता हूं। अधिकारों को सर्वत्र केवल अधिकारों के रूप में ही कहा गया है और कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं कहा गया है। मैं सभा के समक्ष यह प्रश्न रखूंगा कि हम व्यक्तिगत अथवा साम्प्रदायिक रूप में जीवनयापन करते हुए अधिकारों के सम्बन्ध में बहुत अधिक सोच रहे हैं और नागरिक अथवा सम्प्रदाय अथवा राज्य के प्रति हम अपने कर्त्तव्यों को भूल गये हैं। मैं इस बात पर जोर दूंगा कि एक और परिच्छेद राज्य और व्यक्ति के बारे में रखा जाये और परस्पर कर्त्तव्य यदि अधिकारों के परिच्छेद से बड़ा न हो, तो कम से कम समान तो होना ही चाहिये। यदि मैं ऐसा कह सकता हूं, तो अधिकार असीम व्यक्तिवाद-पृथकत्व या पृथकवाद की प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है, जिसमें कोई व्यक्ति किसी दल,

[प्रो. के.टी. शाह]

समाज अथवा सम्प्रदाय की सदस्यता के अधिकारों की अपेक्षा अपनी अधिक पृथक मांगों अथवा अपने विशेषाधिकारों के स्वामित्व या इनकी सम्भावनाओं पर जोर देता है; जबकि कर्त्तव्य पर जोर देने से उसे यह शिक्षा मिलेगी कि वह अकेला ही किसी निर्जन अथवा अज्ञात स्थल में नहीं रह रहा है, बल्कि वह एक सहकारी समिति का, एक परस्पर आश्रित समाज का—एक राज्य का सदस्य है, जिसमें जीवित रहने की एकमात्र प्रत्याभूति, प्रगतिशील उन्नति का एकमात्र अवसर वह सामूहिक प्रयत्न है, जिसमें किसी निश्चित सर्वस्वीकृत उद्देश्य के लिये व्यक्तिगत अधिकारों और व्यक्तिगत मांगों के सामुहिक प्रयास की सबकी आवश्यकता की अपेक्षा गौण माना जाता है। श्रीमान्, हम एक ऐसे युग में हैं जिसमें हम स्वतंत्रता के सम्बन्ध में इतना सोचते हैं तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता के सम्बन्ध में इतनी बातें करते हैं कि हम यह भूल जाते हैं कि स्वतंत्रता के लाभों के साथ-साथ यदि हम आत्म अनुशासन की आवश्यकता को याद रखने की चिन्ता न करें, तो स्वतंत्रता के दुरुपयोग किये जाने की सम्भावना है। यह ऐसा प्रतिबन्ध है, जिसे उसी प्रकार लोगों को अपने ऊपर लगा लेना चाहिये, जैसे कि और किसी प्रकार के अनुशासन को लोग अपने ऊपर लगाते हैं। यह फिर वही सूरत है, जिसमें केवल व्यक्तियों के सम्बन्ध में ही नहीं, वरन् सम्प्रदायों, प्रान्तों तथा समस्त संघ के सम्बन्ध में भी, यदि अधिक नहीं तो अधिकारों के परिच्छेद के समान, मैं कर्त्तव्यता के परिच्छेद पर जोर दूंगा। व्यक्ति को उसके अधिकार हैं और मैं उन अधिकारों में किसी प्रकार की कमी करने के सुझाव से सहमत नहीं हूं। परन्तु इसके साथ-साथ व्यक्ति तथा समाज के भी कुछ परस्पर कर्त्तव्य हैं और जब तक इन कर्त्तव्यों पर ठीक जोर नहीं दिया जाता, तो मुझे भय है कि हममें से बहुतों की हमारे समय में वर्तमान बैचेनी के फलस्वरूप जिन शंकाओं की सम्भावना है, उनका समाधान और निराकरण नहीं किया जायेगा।

इस सम्बन्ध में मैं एक और विचार उपस्थित करूंगा और सभा से निवेदन करूंगा कि बाद में अच्छे प्रकार से इस पर विचार करें। हम प्रजातंत्रवाद का जादूगरी वस्तु के रूप में जिक्र कर रहे हैं। मैं जानता हूं कि इस प्रकार की बात कहने में मैं लोक-अप्रिय भाषा का प्रयोग कर रहा हूं। परन्तु कृपा कर याद रखिये कि सफल प्रजातंत्रवाद को उतना ही गुणात्मक होना पड़ेगा, जितना परिमाणात्मक। आपको

यह स्मरण रखना चाहिये कि केवल उठाये हुये हाथों का संख्या की अथवा उपस्थित जनों की संख्या का ही हमें वजन नहीं होना चाहिये, बल्कि हाथ उठाने वालों के चरित्रों और उपस्थित जनों की योग्यता को भी वजन देना चाहिये।

जो विधान हमारे समक्ष है, उसमें प्रजातंत्रवाद का गुणात्मक अंश यदि कहीं है भी तो उसकी बहुत न्यून मात्रा में है और परिमाणात्मक अंश प्रत्येक परिच्छेद में और यदि कहूं, तो विधान के प्रत्येक शब्द में प्रमुख रूप से व्याप्त है। मैं इस बात के ठीक होने के बारे में अनेकों उदाहरण दे सकता हूं। ऐसे अनेक स्थल है, जहां शब्द व्यंजना इस प्रकार की है कि जिससे प्रजातंत्रवाद को परिमाणात्मक पक्ष, संख्या, संख्याश्रित शक्ति अधिक व्यक्त होती है और जिसमें वह चरित्र बल, आध्यात्मिक पृष्ठपोषण तथा यथार्थ माहात्म्य, जो एक पुष्ट प्रजातंत्र में होने चाहिये, बिल्कुल दृष्टिगोचर नहीं होते।

मुझे भय है कि यह वह विचार है, जो इस समय अधिक लोकप्रिय तथा प्रचलित नहीं है, परन्तु यह वह विचार है, जिसे मैं चाहता हूं कि विधान के अनेकों वाक्य-खंडों को स्वीकार करने के पूर्व कम से कम सभा को ध्यान में तो रखना ही चाहिये। उन वाक्य-खंडों में ऐसे विचार हैं, जो आज के जगत में अप्रचलित हो गये हैं। उस दिन हमसे यह कहा गया था कि इस विधान में कोई नई बात नहीं है। कानून मंत्री ने कृपापूर्वक यह कहा कि ऐसे विषयों में कोई नई बात हो ही नहीं सकती। लीजिये यह एक सुझाव है। हम नवीन भारत के प्रजातंत्र में इस अंग पर, जिसे कि मैंने गुणात्मक पक्ष कहा है, उतना जोर क्यों न दें, जितना कि हम प्रदेशीय अथवा परिमाणात्मक प्रजातंत्र पर अब तक देते रहे हैं। आर्थिक साधनों और कर्त्तव्यों के विभाजन-सम्बन्धी परिच्छेद में, जिसका इसी प्रातःकाल उल्लेख किया गया था, प्रान्तों, इकाइयों और संघों में परस्पर अधिकार-विभाजन सम्बन्धी परिच्छेद में, सद्यस्कृत्यस्थिति के अधिकारों के सम्बन्ध में तथा ऐसे अनेक विषयों में परदे की आड़ से ऐसे संकेत मिलते हैं, कि नये राज्य की अखण्डता, स्वतंत्रता तथा सुरक्षा हेतु आवश्यक बातों में और उन व्यक्तियों के, जिनसे कि राष्ट्र बनता है, स्वतंत्र गौरवपूर्ण तथा समान अवसरपूर्ण जीवन के लिये आवश्यक बातों में पारस्परिक घोर संघर्ष है और इसी संघर्ष की कुछ झलक हमें मसौदा बनाने वालों के मत से भी मिलती है।

[प्रो. के.टी. शाह]

श्रीमान्, मेरी यह इच्छा नहीं है कि आप दुबारा घंटी बजायें, यद्यपि मुझे बहुत कुछ कहना है। यदि आप कृपा करके मुझे और भी अधिक समय दें, तो उसमें भी मैं समाप्त न कर सकूंगा। अतः जो कुछ मुझे कहना है, वह मैं संशोधनों पर वाद-विवाद करते समय कहूंगा। धन्यवाद।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्रः** श्रीमान्, यदि मैंने अपने पुराने साथी तथा मित्र डा. अम्बेडकर को उनके कल के भाषण के लिये बधाई न दी, तो मैं यह न समझूंगा कि मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया। वैधानिक सुझावों को कानूनी रूप देने में उन्होंने जो अपरिमित शक्ति और समय लगाया है, सभा इस बात के लिये उनकी प्रशंसा करती है। जो थोड़ा समय मुझे मिला है, उसमें मैं इस विधान की खास-खास बातों पर अपने विचार प्रकट करूंगा और इससे पूर्व कि मैं प्रावधानों के विश्लेषण में अपने को लगा दूं, मैं डा. अम्बेडकर व श्री गोपालस्वामी आयंगर से प्रार्थना करता हूं कि मेरी बात को वे कुछ मिनटों तक ध्यानपूर्वक सुनें।

जिस पहली बात की ओर मैं डा. अम्बेडकर का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं, वह है उनका यह बयान, जिसमें उन्होंने भारत को राज्यों का संघ कहा है। इस बारे में मेरी विशेष आपत्ति 'राज्यों' शब्द के प्रयोग के बारे में है। और वह इसलिये कि वैधानिक साहित्य में 'राज्य' का एक विशेष अर्थ है। दुर्भाग्यवश 'राज्य' शब्द का प्रयोग विधान के मसौदे में अनेकों स्थलों पर ऐसे अनेकों आशयों से तथा विभिन्न अर्थों में किया गया है कि उस प्रयोग के कारण गड़बड़ी होने की सम्भावना है। भारत की व्याख्या में यदि राज्य शब्द को इसी रूप में रखा जाता है, जिस रूप में वह है, तो सम्भव है कि भविष्य में यह विचार पैदा हो कि ये राज्य स्वाधीन सर्वोच्च राज्य थे और अपनी इच्छा से केन्द्र में सम्मिलित हुए थे। संयुक्त राष्ट्र अमरीका में जो कुछ हुआ, वे वैधानिक इतिहास के विद्यार्थियों को ज्ञात है। वहां के कुछ राज्यों में उस काल के प्रमुख विधि-शास्त्रियों की सम्मति के प्रभाव से लोगों का ऐसा दल बन गया था, जो राज्यों के अधिकारों का पक्षपाती था और जिसका यह कहना था कि राज्यों में से प्रत्येक राज्य स्वयं स्वतंत्र तथा प्रभुता सम्पन्न है और राज्यों ने आपस में स्वेच्छा से मिलकर ही संघ का निर्माण किया है और वे साथ मिलकर कार्य करते हैं। मैं चाहता हूं कि ऐसी

बात यहां न होने दी जाये। हमारे हाथ में प्रभुता आने से पूर्व हमारे यहां ऐसे प्रदेश अनेकों थे, जो देशी रियासतों के नाम से प्रसिद्ध थे। उनमें से बहुत से भारतीय संघ में सम्मिलित हो गये हैं। यदि भारत की यही व्याख्या, जैसी कि अनुच्छेद 1 और 2 में दी हुई है, रखी जाती है, तो भविष्य में किसी समय ये 'राज्य' यह कह सकते हैं कि वे सर्वोच्च राज्य हैं और केवल अपनी इच्छा से भारतीय संघ में सम्मिलित हुए हैं हम इस विधान में इस बात को पूर्णतया स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि यह संघ अविनाशी राज्यों का अटूट संघ है और राज्य शब्द से केवल वैधानिक इकाइयां अभिप्रेत है। यदि इस विषय को मैं और आगे बढ़ाऊं, तो सभा का अधिक समय ले लूंगा। हमें किसी उपयुक्त शब्द को ढूंढ निकालना है। गवर्नर के प्रान्तों के लिये हम प्रान्त शब्द का प्रयोग कर सकते हैं और देशी रियासतों के लिये प्रदेश अथवा ऐसे ही किसी अन्य शब्द का प्रयोग कर सकते हैं। यदि अजमेर-मेरवाड़ा, कुर्ग या देहली को भी राज्य नाम से गौरवान्वित किया गया, तब तो वास्तव में यह बात बड़ी हास्यास्पद होगी।

दूसरा विषय जिसकी ओर मैं सभा का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं, वह विवेकात्मक अधिकार है, जो विधान में गवर्नरों को दिये गये हैं। सभा को यह भली प्रकार विदित है कि भारत सरकार के सन् 1935 ई. के अधिनियम में गवर्नर को कुछ विशेषाधिकार दिये गये थे, जिनका उपयोग वह अपने विवेक अथवा अपने व्यक्तिगत मत के आधार पर कर सकता था। इसके कारण प्रान्तीय मंत्रियों तथा गवर्नरों में बहुत झगड़ा रहा। कुछ प्रधान मंत्री यहीं मेरे सम्मुख बैठे हुये हैं और जो कुछ मैं कह रहा हूं, उसका समर्थन वे सिर हिलाकर कर रहे हैं और इसके कारण देश में प्रजा द्वारा चुने हुये मंत्रियों में असंतोष रहा। 15 अगस्त सन् 1947 ई. के पश्चात् हमने इस प्रावधान को हटा दिया। अब आजकल इस प्रकार का प्रावधान है कि ''गवर्नर को अपने कार्य सम्पादन में राय देने तथा सहायता देने के लिये मंत्रियों की एक परिषद् होगी'' और भारत सरकार के 1935 ई. के अधिनियम के अंतर्गत उन समस्त विवेकात्मक अधिकार को निकाल दिया गया है, जिनका कि गवर्नर 15 अगस्त सन् 1947 ई. तक उपभोग करता रहा था। किन्तु यह देखकर आश्चर्य होता है कि इन हानिकारक प्रावधानों को इस विधान में अनुच्छेद 143(1) और (2) के रूप में ज्यों का त्यों रख दिया गया है। इस विधान में भी हमने गवर्नर के विवेकात्मक अधिकारों के लिये प्रावधान किया है। किन्तु सभा से मेरी यह प्रार्थना है कि वह यह निश्चय कर ले कि वह आगे बढ़ना चाहती

[पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र]

है, या पीछे हटना, प्रगति चाहती है या प्रतिक्रिया। आज इस देश का विधान इस बात की व्यवस्था करता है कि इस देश का गनर्वर अथवा गवर्नर-जनरल केवल सर्वोच्च वैधानिक अधिकारी के रूप में कार्य करेगा, इससे अधिक नहीं, यदि भविष्य में अनुच्छेद 143(1) और (2) के सहित यह संविधान अपने वर्तमान स्वरूप में प्रवर्तित होता है, तो शासक वैधानिक मुखियाओं की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हो जायेगा और वह इस कारण से कि, उसमें कुछ विवेकात्मक शक्तियां भी निहित होंगी। एक और भी प्रश्न है, जिस पर मैं सभी का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। सन् 1935 के भारत-शासन-अधिनियम की धारा 54 में एक कल्याणकारी अवरोध था। वह यह प्रावधान करता था कि जब कभी गवर्नर अपने विवेक अथवा अपने व्यक्तिगत मत के अनुसार अधिकारों का प्रयोग करे, तो वह ऐसा करने में गवर्नर-जनरल के निरीक्षण, पथ प्रदर्शन और नियंत्रण के अधीन होगा। किन्तु इस विधान में तो ऐसे प्रावधान का सर्वथा अभाव है। अतः इस बात पर गम्भीर विचार करने की आवश्यकता है।

जो तीसरी बात मैं कहना चाहता हूं, उसका सम्बन्ध अतिशक्तिशाली केन्द्र के प्रावधान से है। एक माननीय सदस्य, जो मुझसे पूर्व भाषण दे रहे थे, वह शिकायत कर रहे थे कि केन्द्र अतिशय शक्तिशाली बनाया जा रहा है। हां, यदि हम नवजात स्वतंत्रता की रक्षा करना चाहते हैं, यदि हम देश को शक्तिशाली बनाना चाहते हैं, तो हर प्रकार से हमें एक शक्तिशाली केन्द्र की आवश्यकता है। (*हर्षध्वनि*) प्रान्तीय स्वायत्त शासन का, जिसके लिये हम पहले लालायित थे, हमें यथेष्ट अनुभव हो गया और हमने उसके परिणाम देख लिये। इसने जिन केन्द्र विरोधी और घातक प्रवृत्तियों को उत्पन्न किया है, उनका हमने अनुभव कर लिया है और हम जानते हैं कि इससे हमें क्या हानियां हुईं हैं। यदि हम समस्त अंगभूत इकाइयों को एक दूसरे से मिली हुई रखना चाहते हैं, तो उनको संगठित करने के लिये एक केन्द्र की आवश्यकता है और इस आशय की पूर्ति के लिये संघ के पास खूब अधिकार होने चाहिये। इसका आशय यह नहीं है कि प्रान्तीय स्वायत्त-शासन में बेदर्दी से अतिशय कमी कर दी जाये।

मेरी अगली बात अल्पसंख्यकों के लिये स्थान रक्षण के बारे में है। इस सम्बन्ध में मेरे प्रबल विचार हैं। आजकल की स्थिति में स्थानों के रक्षण का कोई अर्थ

नहीं है। (*करतल ध्वनि*) मुसलमानों के लिये स्थान रक्षण में कोई न्याय नहीं है। दो राष्ट्रों के सिद्धान्त के आधार पर और उस सिद्धान्त में निहित सब परिणामों के सहित देश का विभाजन करवाने के पश्चात्, संविधान में मौलिक अधिकारों के प्रावधान के पश्चात् और इनमें से कुछ अधिकार न्याय है, संविधान में शासन सम्बन्धी निदेशक सिद्धान्तों के रखे जाने के पश्चात्, संविधान में वयस्क मताधिकार के प्रवाहित होने के पश्चात्, तथा यह सब करने के पश्चात् भी क्या कोई व्यक्ति यह आवश्यक समझता है कि संरक्षित स्थानों के लिये भी प्रावधान किया जाये। सैद्धान्तिक दृष्टि से मैं ऐसे प्रावधान रखने का विरोधी हूं। मेरे मुसलमान मित्र मुझे गलत न समझें। उन्होंने देश का विभाजन करा लिया है और उस विभाजन से हमें क्या हानियां हुई, यह हम जानते हैं। पंजाब ने इसे समझ लिया है और बंगाल ने इसका अनुभव किया है। अतः आप में से जो व्यक्ति अतिशय असाम्प्रदायिक विचार के लोग हैं, वे जिसको चाहे हर प्रकार के विशेष प्रतिनिधान दें, परन्तु जहां तक पश्चिमी बंगाल और पूर्वी पंजाब का प्रश्न है, मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि उनके सम्बन्ध में आप इस प्रकार की कार्यवाही न करें। विधान-परिषद् के गत अधिवेशन में इस आशय का प्रस्ताव मैंने पास कराया था कि अल्पसंख्यकों तथा औरों के लिये स्थान रक्षण के जो प्रावधान बनाये जायें, उनसे पश्चिमी बंगाल तथा पूर्वी पंजाब को मुक्त रखा जाये और सभा ने इस बात को पूरी तरह स्वीकार किया था।

***प्रो. एन.जी. रंगा** (मद्रास : जनरल): हम सुरिक्षत स्थानों के पक्ष में हैं।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्रः** इस महान् परिषद के उपाध्यक्ष महोदय भारत में भारतीय ईसाई सम्प्रदाय के प्रतिनिधि है। वे प्रसिद्ध तथा प्रभावशाली व्यक्ति हैं और भारतीय ईसाई संघ के वे लगातार तीन बार अध्यक्ष रहे हैं। उनके सुन्दर पथ-प्रदर्शन तथा कुशल नेतृत्व के कारण ईसाई सम्प्रदाय ने कभी विशेष प्रतिनिधान की मांग नहीं की। और भारत में उचित रूप से विशेष प्रतिनिधान की मांग यदि कोई सम्प्रदाय कर सकता है, तो वह भारतीय ईसाई सम्प्रदाय है। उन्होंने एक आदर्श उपस्थित किया है और मैं आशा करता हूं कि शेष सम्प्रदायों के नेता उनके आदर्श का अनुसरण करेंगे। समस्त भारतवासियों को हम एक राष्ट्रीयता के सांचे में ढालने का प्रयत्न कर रहे हैं। विभाजन के पश्चात् भारत एक राष्ट्र रह गया है और विधान निर्माताओं, नेताओं तथा सरकार का यह प्रयत्न होना चाहिये जिससे कि यह आदर्श कि 'हम सब एक राष्ट्र हैं', पूरा हो।

[पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र]

इसके पश्चात् मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि प्रत्येक प्रान्त में हमें द्विसभात्मक विधान-मंडल रखने चाहिये। आप वयस्क मताधिकार दे रहे हैं और आप नहीं जानते कि आपके विधान-मंडल कितने बड़े होंगे और आपको पता नहीं कि आपके यहां किस प्रकार के मनुष्य आयेंगे। जल्दी में बनाए गए कानून पर अवरोध या रोक लगाने के लिये हम पुनर्विचार करने वाली एक सभा चाहते हैं। यह बहुत लाभप्रद प्रणाली है और यह इंग्लैंड में भी प्रचलित है। और मेरे विचार से तो बिना किसी हिचकिचाहट के आपको कम से कम दस वर्ष के लिए प्रत्येक प्रान्त में द्विसभात्मक विधान-मंडल रखने चाहियें। मैं यहां यह घोषणा करता हूं कि बंगाल में हम लोग हर हालत में द्विसभात्मक विधान-मंडल और एक उत्तरागार चाहते हैं।

संविधान सफलतापूर्वक काम में आ सके, यह बात एक बड़े महत्त्वपूर्ण विषय पर आश्रित है और यह विषय प्रान्तों तथा केन्द्र के मध्य आर्थिक समायोजन है। यदि आप यहां और इसी समय इसी विधान में केन्द्र और प्रान्तों में आर्थिक बंटन के आधार का उल्लेख नहीं करेंगे, तो मुझे भय है कि नया वैधानिकतंत्र बहुत असुविधापूर्ण वातावरण में कार्य करना आरम्भ करेगा। जब तक प्रान्तों अथवा अंगभूत इकाइयों को विधान में ही यह नहीं बताया जायेगा कि केन्द्र की आय में उनका क्रमशः कितना भाग है, तब तक वे यह नहीं जान सकेंगे कि अपनी विकास-योजनाओं अथवा राष्ट्र-निर्माणक योजनाओं पर वे किस प्रकार अग्रसर हों। अतः मैं यह सुझाव रखता हूं कि निष्पक्ष अर्थशास्त्रियों की समिति इस प्रयोजन से बनायी जाये कि वह यह जांच करने के बाद कि कौन-कौन से कर लगाये जा सकते हैं, केन्द्र को सलाह दे कि प्रान्तों से होने वाली तथा अन्य करों से होने वाली केन्द्र की आय का कौन सा भाग केन्द्र प्रान्त के हवाले करे और कौन सा भाग अपने पास रखे।

अन्त में साधारण रूप में मैं उस विवाद का भी उल्लेख कर दूं, जो राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में दुर्भाग्यवश सभा में उपस्थित कर दिया गया है। हिन्दी के प्रवर्त्तक अपने उत्साह में बहुत आगे बढ़ गये हैं। प्रतिक्रिया के रूप में मेरे दो-तीन मित्र

उसके विरुद्ध उग्र भाषण दे ही चुके हैं। मैं अपने उत्तरी भारत के मित्रों को विश्वास दिलाता हूं कि यदि हम आज हिन्दी नहीं बोल सकते, तो यह केवल इसी कारण से कि दैवयोग से हमारा जन्म पूर्वी या दक्षिणी भागों में हुआ था। यह केवल जन्म धारण करने के कारण ही है, इसका सम्बन्ध व्यक्तिगत गुणों तथा अवगुणों से किंचितमात्र भी नहीं है।

हम यह जानने का प्रयत्न अवश्य करेंगे कि हम आपके साथ कहां तक चल सकते हैं। हम सब चाहते हैं कि भारत की एक राष्ट्रभाषा हो, किन्तु इस नई बात को कि यदि हमने हिन्दी में बोलना आरंभ न किया, अथवा तुरन्त ही अपने सरकारी काम-काजों को हिन्दी में करना शुरू न कर दिया, तो हमारी स्वतंत्रता अर्थहीन हो जायेगी, बार-बार दुहराने से कोई लाभ तो न होगा। हां, सचमुच में इस बात को बार-बार सुनने से लोगों की नाक में दम अवश्य हो जायेगा।

खैर, आगे कभी हम इस समस्या को सुलझायेंगे। मैं अपने उत्तर के माननीय मित्रों को यह आश्वासन दे सकता हूं कि हिन्दी से हमें हर प्रकार की सहानुभूति है, परन्तु अति उत्साह प्रदर्शित करके वे स्वयं अपने पक्ष को निर्बल न बनायें। यह एक प्रकार का उन्माद है—यह भाषा सम्बन्धी उन्माद है, जिसको यदि बढ़ने और फैलने दिया जायेगा, तो अन्त में यह उसी उद्देश्य को असफल करेगा, जो उनके विचार में है। अतः मैं उनसे यह निवेदन करूंगा कि वे उन लोगों के साथ जरा सब्र और सहनशीलता से काम लें, जो अभी उत्तर की भाषा नहीं बोल सकते हैं। आखिर वे भी तो यही दावा करते हैं कि उनकी भाषा में साहित्यिक रत्न हैं और वे अपनी इस साहित्यिक निधि को केवल उत्तर के लोगों के आदेश पर फेंक देने के लिए तैयार नहीं हैं।

***श्री रामनारायण सिंह** (बिहार : जनरल): मैं डा. अम्बेडकर को बधाई देता हूं कि उनको इस विधान के उपस्थित करने का अवसर मिला। मैं उनके प्रस्ताव का समर्थन करता हूं। राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं के रूप में हम स्वराज शब्द का सदैव प्रयोग करते थे और हम समझते थे कि अंग्रेजों के हाथ से सत्ता सीधी गांव वालों के हाथ में चली जायेगी। परन्तु मेरे विचार से प्रस्तावित विधान उन लोगों को ये अधिकार नहीं देगा। पूर्वानुसार पांच या सात वर्ष में एक बार वे

[श्री रामनारायण सिंह]

अपनी वोट देंगे और वहीं उनके अधिकार समाप्त हो जायेंगे। इसके पश्चात् ब्रिटिश समयानुसार ही उन पर शासन किया जायेगा। हम सब यह चाहते हैं कि देश की राजनैतिक संस्थायें जनता की सेवा करें। हम पूर्वानुसार शासित होना नहीं चाहते हैं। हम गवर्नर और यहां तक कि मंत्रियों को भी नहीं चाहते हैं। राजनैतिक तथा अन्य संस्थाओं को यह विचार करना चाहिये कि देश की जनता की किस प्रकार उत्तम सेवा की जाये। अध्यक्ष तथा मंत्रियों के सम्बन्ध में तो मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर ने इस परिषदात्मक प्रणाली की खूब प्रशंसा की है। उनको यह स्वीकार करते हुए लज्जा नहीं आई कि बहुत-सी बातें अन्य विधानों से ली गई हैं। वास्तव में यह सत्य है कि भिखारी और ऋणकर्त्ताओं को जो कुछ वे करते हैं, उसके करने में लज्जा का आभास नहीं होता, परन्तु जो ऐसा नहीं चाहते हैं, उन्हें इसका दु:ख होता है। यह विधान संसार के अन्य देशों में यह प्रकट करेगा कि हममें मौलिकता नहीं है और हम दूसरे देशों के विधानों से ऋण ही ले सकते हैं। मैं जोरदार शब्दों में कह सकता हूं कि यह वह विधान नहीं है जिसे देश चाहता था।

डा. अम्बेडकर ने इस बात को प्रशंसनीय समझ कर कहा है कि इसमें परिषदात्मक-शासन-व्यवस्था का प्रावधान है। यदि बात ऐसी ही है तो मुझे विश्वास है कि यह दल-शासन को जन्म देगी और इस प्रकार का शासन पश्चिम में असफल सिद्ध हो चुका है।

मैं सभा से निवेदन करूंगा कि वह इस विषय पर बड़ी गम्भीरता से विचार करे। ऐसे भी लोग हैं जो यह विश्वास करते हैं कि दल-शासन प्रजातंत्र का आवश्यक अंग है। इसके विपरीत अनेकों विधिशास्त्रियों तथा राजनीतिज्ञों का यह विचार है—और मेरा भी यही विचार है—कि इसका प्रजातंत्र से सम्बन्ध नहीं है, बल्कि यह तो प्रजातंत्रवाद की जड़ को ही काट डालता है। प्रजातंत्र का अर्थ बहुसंख्यकों का राज है और बहुमत स्वतन्त्र और स्वाधीन मतों द्वारा होना चाहिए। परन्तु हम देखते यह हैं कि हमारे मत कुछ व्यक्तियों के प्रभाव में रहते हैं और यदि मतों पर एक बार भी दूसरों का प्रभाव हो जाता है तो प्रजातन्त्र का खात्मा हो जाता है। इसलिये मैं कहता हूं कि इस परिषदात्मक-शासन-व्यवस्था को इस विधान में से निकाल देना चाहिये। यह पश्चिम में असफल हो चुकी है और इस

देश में भी नारकीय दृश्य उपस्थित करेगी। प्रान्तों में इसके प्रयोग का मुझे कटु अनुभव है। अध्यक्षात्मक-शासन-व्यवस्था में एक सच्चे और ईमानदार अध्यक्ष का मिल जाना सरल है, परन्तु ईमानदार और सच्चे मंत्रियों, उपमंत्रियों तथा परिषदीय मंत्रियों (पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी) तथा औरों की सेना मिलना इतना आसान नहीं है। जब तक यह वातावरण रहेगा, कोई न्याय नहीं हो सकता है। यदि अध्यक्ष कोई गलती करता है तो हम उसे हटाने के लिए प्रावधान कर सकते हैं; परन्तु मेरे विचार से केन्द्रों तथा प्रान्तों दोनों में हमें सर्वाधिकार सम्पन्न अध्यक्ष रखने चाहियें और जो कार्य किया जाये उसकी जिम्मेदारी उन पर होनी चाहिए। और वे ही मंत्री तथा सचिव चुनेंगे। इन लोगों के सम्बन्ध में तो मुझे यह कहने की इच्छा होती है कि मिनिस्टर, सेक्रेटरी, इत्यादि, की सेना से शासित होने की अपेक्षा तो राक्षसों द्वारा शासित होना अच्छा है। मैं चाहता हूं कि अधिकार सीधे ग्रामों को दिये जायें। केवल उनका वोट देना ही पर्याप्त नहीं है। उनको दिन-प्रति-दिन की शासन-व्यवस्था में रुचि रखने के लिये बाध्य किया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि एक अच्छे राज्य में न्याय, विधान और शासन तीनों स्वाधीन प्रकार्य हैं। परन्तु इन दिनों परिषदात्मक-शासन-व्यवस्था के अंतर्गत लोग दल बनाते हैं, वोट प्राप्त करने का षड़यंत्र रचते हैं, विधान-मण्डलों में बहुमत प्राप्त करते हैं और शासन हथिया लेते हैं। यह संकटास्पद है। हमें यह मालूम करके दु:ख हुआ कि ये लोग अपने सम्बन्धियों और दल के व्यक्तियों को प्रसन्न करना चाहते हैं। अत: मैं निवेदन करता हूं कि इस परिषदात्मक पद्धति को निकाल देना चाहिये और शासन, न्याय तथा विधान इन तीनों में परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिये।

जहां तक भाषा और गौ-रक्षा का प्रश्न है जो कुछ मेरे मित्र सेठ गोविंददास ने कहा है, मैं उससे सहमत हूं। देश की आर्थिक दशा में यह आवश्यक है कि गौ-रक्षा के विषय को मौलिक अधिकारों में समाविष्ट कर दिया जाये तथा मौलिक अधिकारों में हथियार रखने का अधिकार भी होना चाहिये।

स्थानों के रक्षण के सम्बन्ध में मेरे विचार हैं कि यह न होना चाहिए। मेरे समस्त मित्र जानते हैं कि मैं कभी भी साम्प्रदायवादी न रहा। परन्तु जैसा कि पं. मैत्र ने कहा है कि जब साम्प्रदायिक आधार पर देश का विभाजन हो गया तो

[श्री रामनारायण सिंह]

मुसलमानों के लिए स्थान रक्षण नहीं होना चाहिये। इसके साथ-साथ मैं उन लोगों में से नहीं हूं जो यह कहते हैं कि सब मुसलमानों को पाकिस्तान भेज देना चाहिए या हर प्रकार से भारतीय संघ में उनको तंग करना चाहिये या यह कि उनके अधिकार मेरे अधिकारों से कम होने चाहिये। उनको यहां वे ही अधिकार तथा सुविधायें होनी चाहिये जो औरों को हैं पर उनके लिये स्थान रक्षण की बात नहीं होनी चाहिये। किसी सम्प्रदाय के लिये स्थान रक्षण की व्यवस्था करना देश के लिये बड़ा हानिकर होगा। अन्त में, मैं सभा तथा देश से यह निवेदन करूंगा कि वे इस प्रकार के विधान की रचना करें कि हमारे पवित्र से पवित्र तथा उत्तम से उत्तम देशवासियों को अधिकार मिलें और जो अधिकार का प्रयोग करे वे जनता की सेवा करें और उसे सुखी तथा ऐश्वर्यवान बनायें।

***डा. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रान्त तथा बरार: जनरल): श्रीमान्, प्रस्तावित विधान पर मुझे अपना मत व्यक्त करने का आपने जो अवसर दिया है उसके लिये मैं आपका कृतज्ञ हूं। समय बड़ा सीमित मिला है, इसलिये इसकी आम बातों के बारे में ही मैं अपने विचार रखूंगा। जब विधान के विभिन्न खण्डों पर विचार किया जायेगा, उस समय दुर्भाग्य से मैं यहां उपस्थित नहीं रहूंगा। इस दृष्टि से यह जो चन्द मिनटों का अवसर मुझे मिला है उसके लिए मैं और भी आभारी हूं।

मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर की वक्तृता एक सुन्दर कृतित्व थी और प्रस्तुत विधान पर यह एक बहुत ही प्रभावपूर्ण आलोचना थी। जैसा कि प्रसिद्ध है वह एक ख्यातनामा वकील हैं और मैं समझता हूं कि उन्होंने बड़ी ही योग्यता के साथ अपने पक्ष का प्रतिपादन किया है। शायद विधान को उन्होंने दूसरा ही रूप दिया होता, यदि ऐसा करने की उन्हें सुविधा होती। जो भी हो, मेरी समझ से उन्होंने अपनी कठिनाइयों को पूर्णत: यह कह कर स्वीकार किया है कि शासन व्यवस्था एक दिन में तो नहीं बदली जा सकती। यदि संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत विधान का वर्णन किया जाये तो यही कहना होगा कि यह इसी अभिप्राय से बनाया गया है कि वर्तमान शासन व्यवस्था में यह ठीक-ठीक बैठ सके। यही कारण है कि इसमें कोई नई बात नहीं है, कोई असर डालने वाली और उत्साहजनक बात नहीं है। अंग्रेज जो शासन व्यवस्था इस देश में छोड़ गये हैं उसमें यह ठीक-ठीक बैठ

जाये, इसी अभिप्राय से इसकी रचना हुई है। इसके अनुसार प्रांतीय गवर्नर रहेंगे ही और प्रांतीय शासन में कोई बड़ा उलटफेर होगा नहीं। उलटफेर केवल इतना ही किया गया है कि यत्रतत्र नामों में परिवर्तन कर दिया गया है। हम लोगों को बताया गया है कि भारतीय गणतंत्र का एक प्रधान होगा। जैसा कि विद्वान डा. अम्बेडकर ने स्वयं स्वीकार किया है।

उसका नामान्तर करके इंग्लैंड के वर्तमान राजा के समान उसे एक दयनीय मूर्तिमात्र के रूप में रखा गया है। इस प्रकार प्रधान का नाम यहां केवल एक मिथ्या संज्ञा है। इस संज्ञा को हमें ग्रहण करना है, क्योंकि हमारे सामने कोई दूसरा मार्ग नहीं है और इसलिये भी कि हम अपने अधिशासी प्रमुख को राजा के नाम से पुकारने के लिये तैयार नहीं है। इस प्रधान के अतिरिक्त तथा विधान में मौलिक अधिकारों की जो तालिका रखी गई हैं उसके अतिरिक्त, प्रस्तुत विधान में तथा 1935 के भारत-शासन-अधिनियम में और कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं है। मेरे विद्वान मित्र ने जिस प्रकार इसकी विस्तृत व्याख्या की है, उससे सम्भवत: यह और भी आकर्षक प्रतीत होता है, पर विवेचन करने पर यही निष्कर्ष निकलेगा कि यत्रतत्र के कतिपय परिवर्तनों को छोड़कर यह और 1935 का एक्ट दोनों एक समान हैं।

मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में मेरे माननीय मित्र को स्वीकार करना पड़ा है कि स्वभावत: ये मौलिक नहीं रह गये हैं, जैसा कि इनसे आशा की जानी चाहिये। अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय जो काम करता है उसी को विधान के मसौदे के प्रावधानों द्वारा सम्पादित कराने की चेष्टा की जा रही है। अमेरिकन विधान में जो मौलिक अधिकार रखे गये हैं उनका भाष्य समय-समय पर वहां के सर्वोच्च न्यायालय ने किया है और अपने भाष्य में उन्होंने उन अधिकारों के मौलिक स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ प्रतिबंध रख दिये हैं यही काम हम इन प्रावधानों द्वारा यहां सम्पादित कर रहे हैं जहां तक मेरा व्यक्तिगत सम्बन्ध है, मैं इन मौलिक अधिकारों को कतई पसन्द नहीं करता हूं, क्योंकि जो अधिकार आवश्यक हैं वह तो 1935 के अधिनियम में वर्तमान ही हैं। हां यह बात दूसरी है कि वहां ये इन आकर्षक, भड़कीले नाम से यानी 'मौलिक अधिकार' के नाम से नहीं रखे गये हैं उदाहरण के लिये, भाषण की स्वतंत्रता एवं मिलने-जुलने और संघ बनाने की स्वतंत्रता वहां है, यद्यपि कांग्रेस आंदोलन के काल में विभिन्न अवसरों पर इन अधिकारों को

[डा. पी.एस. देशमुख]

कुचल दिया गया था। वर्तमान में जो मौलिक अधिकार रखे गये हैं उन्हें या तो इतना सीमाबद्ध नहीं करना था जैसा कि वह किये गये हैं या फिर उनकी संख्या ही बहुत कम रखनी चाहिये थी। यह इसलिये कह रहा हूं क्योंकि उनमें से कम से कम कुछ तो ऐसे हैं जो हमारी भविष्य की समुन्नति में बाधक सिद्ध होंगे। उदाहरण के रूप में सम्पत्ति अवाप्त करने या बेचने की कथा जहां चाहे वहां बसने की स्वतंत्रता को ही लीजिये। मैं समझता हूं कि इससे विधान-मण्डल की सत्ता का अपहरण होता है। परिषदात्मक शासन पद्धति के आधार पर निर्मित विधान के इस मसौदे में रखे गये मौलिक अधिकारों का अगर यही स्वरूप होने जा रहा है, तो फिर यही अच्छा होता है कि हम विधान-मण्डल पर ही इसे छोड़ देते कि वह इन अधिकारों के सम्बन्ध में निश्चय कर लिया करे। जब हम इन अधिकारों को व्यापक रूप में देने को प्रस्तुत नहीं हैं, तो फिर इनकी व्याख्या करके विधान-मण्डल की सत्ता का अपहरण या उस पर आघात ही क्यों करें? मौलिक अधिकारों को प्रतिबंधों से इतना जकड़ दिया गया है कि न वह मौलिक रह गये हैं और न अधिकार ही रह गये हैं। कम से कम कुछ बातों के सम्बन्ध में तो इनमें न अधिकार की ही कोई बात है और न आधारभूत ही कोई बात है, ये केवल गणनामात्र के लिये है और कोई महत्त्व की बात इनमें नहीं है।

शासन सम्बन्धी निर्देशात्मक सिद्धान्तों को जो विधान में स्थान दिया गया है, उसके औचित्य को समझाने में डा. अम्बेडकर को काफी कष्ट उठाना पड़ा है। बाध्य होकर उन्हें यह स्वीकार करना पड़ा है कि यदि उनके बस की बात होती तो वे इन सिद्धान्तों को विधान की अनुसूची में रखते। मेरी समझ से तो यह उनकी स्पष्ट स्वीकारोक्ति है। वस्तुतः विधान में इनका कोई स्थान नहीं है। यह तो एक प्रकार से निर्वाचन के समय प्रचारित किया जाने वाले कार्यक्रम सम्बन्धी घोषणा-पत्र है। और फिर स्वयं ये निर्देशात्मक सिद्धान्त ही बुनियादी किस्म के नहीं है। यदि विधान में इस बातों का प्रावधान रहता कि देश के खनिज साधनों पर राज्य का सत्वाधिकार स्थापित करना राज्य का कर्त्तव्य होगा, देश के सारे उद्योग जनता की सम्पत्ति होंगे, सरकार अपनी सम्पूर्ण शक्ति जनता से प्राप्त करती है और किसी भी व्यक्ति को किसी के द्वारा शोषित न होने दिया जायेगा, तो मैं इस अध्याय का रखा जाना स्वीकार कर लेता हूं। अगर इस प्रकार की कोई बुनियादी बात होती तो उसकी अधिक उपयोगिता थी। इन्हें आदेश-पत्र के रूप में रखना

जैसा कि डा. अम्बेडकर ने सुझाया है, बिलकुल व्यर्थ है। चाहे जो हो विधान में तो इनको स्थान मिलना ही नहीं चाहिये था।

मेरे मित्र ने यह समझाने का प्रयास किया है कि प्रस्तुत विधान संघात्मक से अधिक एकात्मक है। मेरा अपना स्पष्ट मत तो यह है कि यह विधान न तो संघात्मक ही है और न एकात्मक ही। ऐसी स्थिति में, यह विधान 1935 के एक्ट से कुछ भी अच्छा नहीं है। एकात्मक तो यह इसलिये नहीं है, क्योंकि इसके अनुसार एक प्रकार का प्रान्तीय स्वराज जारी रहेगा। संघात्मक यह यों नहीं है कि प्रादेशिक राज्यों को समुचित मात्रा में कोई स्वतंत्रता नहीं प्राप्त है। इसलिये मेरी समझ से तो यह विधान अनेक विभिन्न विधानों के प्रावधानों की खिचड़ी है और मेरे मित्र इस मुसीबत में पड़ गये हैं कि इसे एक समुचित विधान के रूप में किस प्रकार रखें। निश्चय ही एक योग्य वकील की तरह उन्होंने विधान की प्रत्येक प्रावधान का औचित्य सिद्ध कर दिया है और बहुत सम्भव है कि बिना किसी विशेष परिवर्तन के यह विधान सभा द्वारा स्वीकृत हो जाये। मैं तो समझता हूं कि यही विधान हमारे भाग्य में है, दूसरा नहीं। किन्तु फिर भी मैं कहूंगा कि हमारा विधान ऐसा होना चाहिये जिसे पाकर प्रत्येक देशवासी हर्ष और उत्साह का अनुभव करे।

श्रीमान्, जो भी हो भारतवर्ष एक कृषकों का देश है। किसान और मजदूरों को शासन व्यवस्था में और अधिक हिस्सा मिलना चाहिए ताकि उनकी आवाज सुनी जा सके। विधान द्वारा उनको यह अनुभूति मिलनी चाहिए थी कि पृथ्वी के इस विशालतम देश के वही असली मालिक हैं। मैं इस विचारधारा से सहमत नहीं हूं कि हमारा अतीत या हमारी प्राचीन सभ्यता इस योग्य नहीं है कि हम भारतीय राष्ट्र के भावी निर्माण के लिए उसका उपयोग करें। इस विचारधारा से मैं असहमत हूं। जो थोड़ा समय मुझे मिला था उसके अन्दर मैं यही चन्द बातें आपके सामने रख सका हूं। मैं नहीं समझता कि सभा इस स्थिति में होगी कि विधान में वह बहुत कुछ परिवर्तन कर सके।

मैं यहां इस बात का उल्लेख कर सकता हूं कि कुछ लोगों का यह ख्याल है कि हम लोग विधान-परिषद् में किसी तरह आ गये हैं और यही चाहते हैं कि येन केन प्रकारेण यहां आफिस में अभी बने रहे। यद्यपि इस प्रकार की भावना

[डा. पी.एस. देशमुख]

लोगों में वर्तमान है फिर भी हमें परिस्थिति के अनुसार, जो भी कर सकें करना चाहिए। इस भावना को दूर करने का तथा यथासम्भव उसे सुधारने का हमें प्रयत्न करना ही होगा। वर्तमान परिस्थिति में उतना ही हमारे लिये सम्भव है।

माननीय डा. अम्बेडकर ऐसा विधान तो नहीं बना पाये जो भारतीय जनता की संस्कृति के अधिक निकट हो किन्तु आशा है कि ऐसे संशोधनों के सम्बंध में वे अनुकूल रुख रखेंगे जो इस उद्देश्य से उपस्थित किये गये हों कि साधारण नागरिक को और उत्साह मिले तथा किसान और मजदूरों के मन में यह भावना पैदा हो कि उसका राज अब आने वाला है। यही आशीर्वाद महात्मा गांधी ने उन्हें दिया था।

***श्री एस. नागप्पा:** उपाध्यक्ष महोदय, मसौदा-समिति के माननीय सभापति एवं उसके सदस्यों को बधाई देने में मैं भी पूर्व वक्ता का साथ देता हूं। उन्होंने सावधानी से इस बात का प्रयास किया है कि सभी समस्याओं के सारे पहलूओं पर विचार करके तथा विभिन्न समितियों की रिपोर्टों का समुचित मनन करके उनके अनुसार विधान बनाया जाये।

जहां तक श्रमिकों की समस्या का प्रश्न है, जिसकी ओर मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने कृपया हमारा ध्यान आकृष्ट किया है, हम यही देख रहे हैं कि श्रमिक-समस्या के समाधान के लिये भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न उपायों की रचना की जा रही है। इसलिये यह अच्छा होता कि यह विषय केन्द्रीय सूची में रखा जाता। श्रमिक वर्ग को उत्तेजना प्रदान करने वाली समस्याओं के समाधान में इससे सहायता मिलेगी।

श्रीमान्, मैं उन लोगों से पूर्णत: सहमत हूं जो केन्द्र को मजबूत बनाने की वकालत करते हैं, विशेषत: इसलिये कि हमने अभी-अभी स्वतंत्रता प्राप्त की है, जैसा कि सभी जानते हैं। इसे पुष्ट तथा सदा के लिये स्थायी बनाने के लिये हमें काफी समय चाहिये। एक दूसरे कारण से भी केन्द्र का मजबूत होना जरूरी है। सम्प्रदाय एवं धर्म के कारण हम आपस में कई बातों में एक नहीं थे। अब प्रान्तीयता के आधार पर हमें अनेक न होना चाहिये। इसलिए भिन्न-भिन्न प्रान्तों

को एक करने के लिये तथा और अधिक एका लाने के लिए एक मजबूत केन्द्र का होना देश-हित के लिए वांछनीय है।

हमें मजबूत केन्द्र को क्यों रखना चाहिये, इसका एक दूसरा कारण भी है जिसका मैं अभी उल्लेख करूंगा। कुछ लोग यह कहते हैं कि युद्ध का मनोभाव रखते हुए हमें एक मजबूत केन्द्र रखना चाहिये। मेरी समझ से युद्ध का मनोभाव हमें रखना ही नहीं चाहिए। अहिंसात्मक एवं सत्यपरायण बने रहने की हमने शिक्षा पाई है। यही हमारे सिद्धान्त हैं। ऐसी स्थिति में यह सम्भावना नहीं है कि केन्द्र युद्ध का मनोभाव रखे।

माननीय डॉ. अम्बेडकर ने विधान का मसौदा तथा अपनी रिपोर्ट उपस्थित करते हुए कहा है कि प्रस्तुत विधान बनावट में तो संघात्मक है, पर इसका आन्तरिक स्वरूप एकात्मक है। मैं समझता हूं कि विशेषत: वर्तमान समय में हमें ऐसे ही विधान की आवश्यकता है। विधान के सम्बन्ध में हम लोगों से यह कहा गया है कि इसमें 1935 के भारत-शासन-अधिनियम से ही बहुत कुछ लेकर इसमें कर दिया गया है। बात यह है कि अगर हम कोई अच्छी बात देखते हैं तो हम उसको अपनाते हैं, उसकी नकल करते हैं। अगर किसी अन्य विधान में कोई ऐसी चीज हम पाते हैं जो हमारे लिये, हमारे आचार-व्यवहार के लिये एवं हमारी संस्कृति के लिये उपयोगी और लाभप्रद है, तो उसको अपना लेने में कोई हानि नहीं है।

विधान में अल्पसंख्यकों के लिये अच्छी व्यवस्था की गई है। इस बात से मुझे प्रसन्नता है और उन प्रतिनिधियों को भी प्रसन्नता है जो अल्पसंख्यकों के हितरक्षार्थ यहां सदस्य के रूप में आये हैं इसके लिये बहुसंख्यक वर्ग को हमें बधाई देनी चाहिये। हमें बहुसंख्यक वर्ग का अभिनन्दन करना चाहिये कि उन्होंने अल्पसंख्यकों को कतिपय विशेषाधिकार, विशेष सुविधायें दी हैं।

यहां यह प्रश्न उठाया गया था कि क्या अल्पसंख्यकों को संरक्षित स्थान देना आवश्यक है? मैं समझता हूं कि हमेशा के लिये और सभी अल्पसंख्यकों को संरक्षित स्थान देना, हो सकता है आवश्यक न हो, पर कुछ ऐसे अल्पसंख्यक वर्ग हैं जिन्हें संरक्षण की आवश्यकता है। मैं यह नहीं चाहता कि सदा के लिये ये संरक्षण जारी रखे जायें। यह तो अधिकतर बहुसंख्यक वर्ग पर निर्भर करता है कि वह अपने व्यवहार द्वारा अल्पसंख्यकों को अपने में घुलमिल जाने दें। अल्पसंख्यक यह नहीं चाहते कि वह संरक्षण की मांग करें और सदा के लिये

[श्री एस. नागप्पा]

बहुसंख्यक वर्ग से पृथक बने रहे। वे तो इस बात के लिये बहुसंख्यक वर्ग से भी अधिक उत्सुक हैं कि जल्द से जल्द वह बहुसंख्यक वर्ग के साथ घुलमिल जाये। पर इस काम को पूरा करने का भार बहुसंख्यक वर्ग पर है, न कि अल्पसंख्यकों पर। बहुसंख्यक वर्ग का व्यवहार ऐसा होना चाहिये कि अल्पसंख्यकों में यह भावना उत्पन्न हो कि वे बहुसंख्यक वर्ग से भिन्न नहीं है। ऐसा होने पर ही, श्रीमान, हम अल्पसंख्यक-समस्या का समाधान करने में समर्थ होंगे। जो भी हो, बहुसंख्यक वर्ग का मैं कृतज्ञ हूं कि इस समस्या के समाधान में वह इतनी दूर आगे बढ़ा है। जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री फ्रैंक एन्थॉनी ने आज सवेरे कहा है, बहुसंख्यक वर्ग की इच्छापूर्ति के सम्बन्ध में अल्पसंख्यक वर्ग आधे से अधिक रास्ता तय कर चुका है। कुछ बातें ऐसी हैं जिनके लिए कम से कम कुछ वर्षों के लिए संरक्षण रखना आवश्यक है। मैं केवल इस बात पर जोर देता हूं कि यह देखना बहुसंख्यक वर्ग का कर्त्तव्य है कि अल्पसंख्यक यह न अनुभव करने पाये कि वे अल्पसंख्यक हैं।

श्रीमान्, मुझे प्रसन्नता है कि विधान में सामाजिक समस्याओं के समाधान का भी प्रयास किया गया है किसी भी रूप में स्पृश्यापृश्य का भेदभाव बरतना अपराध घोषित किया गया है। मुझे इस बात की खुशी है कि मसौदा-समिति ने इस बात का ध्यान रखा कि यह बात विधान में आ जाये।

नौकरियों के सम्बंध में विधान में ऐसी व्यवस्थाएं रखी गयी हैं जिसमें कि अल्पसंख्यकों को यथेष्ट प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके। किन्तु एक बात विधान में नहीं आ पाई है, जिसकी ओर मैं सभा का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। विधान में इस बात के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है कि किसी पार्टी का नेता अपनी जो गवर्नमेंट या मंत्रिमंडल बनायेगा वह ऐसा होगा जिसमें सभी विचारधाराओं को तथा जनता के सभी वर्गों को प्रतिनिधित्व प्राप्त रहेगा। यदि ऐसी व्यवस्था विधान में हो जाती तो इससे अल्पसंख्यक समस्या का बहुत कुछ समाधान हो जाता। मैं मसौदा-समिति के प्रति कृतज्ञ हूं कि उसने अल्पसंख्यकों की बहुत सी बातों को मान लिया है। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय मंत्रिमण्डल की रचना के सम्बन्ध में मैंने जो सुझाव अभी दिया है उसके अनुसार यदि कोई प्रावधान मसौदा-समिति विधान में रख देती तो उससे अल्पसंख्यक समस्या का पूर्णतः समाधान हो जाता। अल्पसंख्यकों का कोई प्रतिनिधि मंत्रिमण्डल में रखा जाये या नहीं, इस बात को अगर प्रधानमंत्री

की इच्छा पर छोड़ दिया जाता है तो इसका क्या फल होगा, इसकी कल्पना सभा स्वयं कर सकती है। प्रधान मंत्री यह कह सकता है कि उसकी पार्टी में अल्पसंख्यक वर्ग का कोई सदस्य नहीं है और इसलिए दल के बाहर के व्यक्ति को मंत्रिमण्डल में लेना जरूरी नहीं है, ताकि देश की शासन व्यवस्था में अल्पसंख्यकों का भी हाथ रहे। इसलिए यह अच्छा होता अगर मसौदा-समिति विधान में ऐसा प्रावधान रखती कि मंत्रिमण्डल में—प्रान्तीय तथा केन्द्रीय दोनों में—ही अल्पसंख्यकों को समुचित प्रतिनिधित्व देना ही होगा।

जहां तक भाषा का प्रश्न है, दक्षिण भारत से आने वाले मेरे माननीय मित्र ने विचार व्यक्त किया है। मैं ऐसा अनुभव करता हूं कि उत्तर भारत से आने वाले मेरे मित्रगण इस बात का अनुचित लाभ उठा रहे हैं कि उन्होंने जन्म से ही हिन्दी सीख रखी है। चूंकि उन्होंने जन्म से ही हिन्दी सीख रखी है इसलिए यह तो न होना चाहिए कि वे लोग दक्षिण भारत के लोगों पर जबरदस्ती हिन्दी लाद दें। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम लोग हिन्दी के पक्ष में नहीं है हम अंग्रेजी या अन्य किसी भी भाषा के लिए उत्सुक नहीं है। हम तो अपनी भाषा हिन्दी के लिए ही उत्सुक हैं। किन्तु इसको लाने में कुछ समय लगेगा। एक बच्चा भी जब स्कूल भेजा जाता है तो उसकी पढ़ाई मैं कुछ समय लगता है। आखिर आपको जल्दी क्या है? ऐसा तो है नहीं कि आप को कोई ट्रेन पकड़नी है जो इस सम्बंध में इतनी जल्दबाजी से आप काम लें। उत्तर भारतीय मित्रों को मैं विश्वास दिलाना चाहता हूं कि हम लोग एक भाषा के ही पक्ष में हैं, चाहे वह हिन्दी हो या अन्य कोई भाषा हो, जिसे कि यह सभा निश्चित करे। किन्तु आपको यह कोशिश तो न करनी चाहिए कि वह भाषा हम पर एकाएक लाद दी जाये और इस तरह हम अंधकार में पड़ जायें। इस देश के निवासी जब तक कि उस भाषा के अभ्यस्त न हो जायें तब तक तो हमें रुकना ही पड़ेगा।

श्रीमान्, इस विधान का मसौदा तैयार करने में माननीय डा. अम्बेडकर ने जो कष्ट उठाया है उसके लिए मैं उन्हें पुनः धन्यवाद देता हूं। निःसंदेह यह विधान बहुत विस्तृत है, पर बड़े कम समय में और सफलतापूर्वक डा. अम्बेडकर ने इसे तैयार किया है।

उपाध्यक्षः कल प्रातः 10 बजे तक के लिए सभा स्थगित की जाती है।

इसके बाद सभा शनिवार को प्रातः 10 बजे तक के लिए स्थगित हुई।